पृ. 49–152. यह सुदीर्घ लेख सामंतवाद पर विस्तृत चर्चा पेश करता है और एंडरसन के तर्कों में सैद्धांतिक असंगतियां उजागर करता है.

चार्ल्स टिली, *कोएर्सन, कैपिटल एंड यूरोपियन स्टेट्स : ए.डी. 990–1990*, ऑक्सफोर्ड, बेसिल ब्लैकवेल, 1990. यह आधुनिक राज्य की उत्पत्ति की वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत करती है और यूरोप के अलग-अलग हिस्सों में उनमें भिन्नता के कारणों और बाहरी खतरों की भूमिका का उल्लेख करती है.

इमैनुएल वालरस्टीन, *दि मॉडर्न वर्ल्ड-सिस्टम : कैपिटलिस्ट एग्रीकल्चर एंड दि ओरिजिंस ऑफ दि यूरोपियन वर्ल्ड इकानॉमी इन दि सिक्सटींथ सेंचुरी*, लंदन, अकादमिक प्रेस, 1974. यह पूंजीवाद की उत्पत्ति की नई लेकिन विवादास्पद व्याख्या पेश करती है. इस विषय में रुचि रखने वाले के लिए यह अच्छी पुस्तक है.

अध्याय छह

सोलहवीं सदी का आर्थिक घटनाक्रम

सोलहवीं सदी को यूरोप में विस्तार के युग के रूप में जाना जाता है जो सत्रहवीं सदी के आरंभ तक रहा। इस अवधि के दौरान एशिया, अफ्रीका और अमरीका की नई दुनिया के साथ लंबी दूरी के व्यापार शुरू हुए। परिणामस्वरूप यूरोप का आर्थिक केंद्र भूमध्यसागरीय नगरों से बदलकर पश्चिमोत्तर यूरोप के अटलांटिक तट पर आ गया।

मध्य युग से ही यूरोप के आर्थिक इतिहास में उतार-चढ़ाव के सुस्पष्ट दौर रहे हैं। लगभग 1000 ई. में आक्रमणों के युग से लेकर पंद्रहवीं सदी के आरंभ तक यूरोप ने आर्थिक विस्तार के एक लंबे युग का अनुभव किया। आबादी बढ़ी। इसके साथ ही खेती बढ़ी। कई शहर और नगर उभरे और इससे व्यापार संवर्द्धन हुआ। कुल मिलाकर इस दौरान धन का विकास हुआ। बाद में यह आर्थिक विकास उलटा हो गया। ब्लैक डेथ्स यूरोपियों के लिए तकलीफों का एक लंबा दौर लेकर आया। यह आर्थिक संकुचन और जनसंख्या में कमी का दौर था। पंद्रहवीं सदी के अंतिम 25 वर्षों में यूरोपीय अर्थव्यवस्था में तेजी आई। सोलहवीं सदी को उन्नति, आर्थिक विस्तार, संपन्नता और जनसंख्या वृद्धि का काल माना जाता है। समुद्री खोज यात्राओं के बाद औपनिवेशिक साम्राज्यों का उदय हुआ। इससे यूरोपियों के लिए नए अवसर खुले। उपनिवेशों के कारण न केवल व्यापार के ढांचे को बदला गया बल्कि यूरोपीय बाजार में चीनी और चांदी सहित कई नए उत्पाद और आम उपभोग की वस्तुएं बड़े पैमाने पर आ गईं। व्यापार की कुल मात्रा नई ऊंचाइयां छूने लगीं। इससे कम उपभोग और उच्च वितरण लागत की पारंपरिक बाधाएं दूर हुईं। व्यावसायिक गतिविधियों और वाणिज्यिक लेन-देन में व्यापक विस्तार से व्यापार की संरचना और संगठन में बदलाव आए। कई विद्वान मानते हैं कि नए खोजे गए प्रदेशों से चांदी की आपूर्ति में आई अचानक तेजी से मूल्य क्रांति हुई। इन सभी परिवर्तनों के साथ आबादी भी बढ़ रही थी जिससे खेती पर बहुत अधिक दबाव आ गया। यूरोप के कई हिस्सों में खेती के अधीन क्षेत्र में विस्तार हुआ और पैदावार बढ़ी। कई राज्यों में ग्रामीण इलाकों में कुटीर उद्योग की शुरुआत हुई। बहरहाल यह सारा विस्तार सामंती ढांचे के भीतर हुआ जिसमें कई रुकावटें और कठिनाइयां थीं जिससे एक बिंदु के बाद विकास रुक गया और सत्रहवीं सदी आर्थिक ठहराव और ह्रास का समय कहलाया।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था

ज्यादातर ग्रामीण आबादी भूमि पर निर्भर करती थी। 4/5 भाग से अधिक आबादी अपनी आजीविका के लिए खेती पर आश्रित थी। शेष आबादी में व्यापारी, किरायाजीवी, कुलीन और चर्च के लोग शामिल थे। ग्रामीण मजदूर आम तौर पर स्थानीय उपभोग की वस्तुएं उत्पादित करते थे। लेकिन बढ़ते शहरीकरण से कुछ ग्रामीण उत्पाद शहरों में भी पहुंचने लगे। इनमें कृषि उत्पाद, खाद्यान्न, दूध उत्पाद, ऊन, चमड़े, पशुचर्म और मवेशी शामिल थे। किसानों के मालिक उनके कृषि उत्पाद के अधिशेष करों और सामंती बकायों के जरिए पूरी तरह हड़प लेते थे। ये मालिक जागीरदार थे—अयाजक और चर्च संबंधी लाड्स दोनों। साथ ही यूरोप के कुछ भागों में उभरते नए निरंकुश शासक भी। किसानों के पास इतनी आय नहीं बचती थी जिसका उपयोग वे खेती के सुधार के लिए कर सकें। केवल निचले देश (लो कंट्रीज) इसका अपवाद थे। यहां वणिक प्रवृत्ति के कुछ लोगों द्वारा कृषि में सीमित रूप से निवेश किया गया था। उत्तरी सागर के तट पर जल निकास और नहर और बांध निर्माण में तेजी से विकास हुआ। 1565 और 1615 ई. के बीच नीदरलैंड्स में 44,000 हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य बनाई गई (एबेल विलहेम)। 1590 और 1650 के बीच कृषि योग्य भूमि में आठ गुना वृद्धि हुई।

सोलहवीं सदी में यूरोप के अधिकांश हिस्सों में कृषि में कोई खास बदलाव नहीं आया, हालांकि कुल उत्पादन में वृद्धि हुई। आम धारणा यह है कि यह अप्रगतिशील कृषि थी जिसमें चौदहवीं सदी से कोई परिवर्तन नहीं आया था। फसल भूमि के एक बड़े हिस्से में खाद्यान्नों की खेती होती थी। गेहूं को रोटी की दृष्टि से सबसे बढ़िया फसल माना जाता था। लेकिन यह छोटी आबादी के लिए ही था। इसके लिए अच्छी मिट्टी की आवश्यकता थी और इसकी खेती राइनलैंड, लिमेन, मध्य यूरोप और स्पेन के कुछ भागों में की जाती थी। गेहूं का एक विकल्प *स्पेल्ट* या *डिंकेल* था जो दक्षिणी यूरोप और निचले देशों में उगाया जाता था। इस क्षेत्र में इसने गेहूं की जगह ले ली। अधिकांश लोगों के लिए गेहूं नहीं बल्कि राई मुख्य खाद्य फसल थी। इसकी खेती ज्यादातर पश्चिमी, मध्य और पूर्वी यूरोप में की जाती थी लेकिन पोलैंड इसका प्रमुख केंद्र था। उत्तर के ऊंचे प्रदेशों और आल्प्स क्षेत्र में जई की खेती होती थी। पूरी सोलहवीं सदी के दौरान खाद्य पदार्थ की कीमतें बढ़ती रहीं। जनसंख्या वृद्धि ने उत्प्रेरक का काम किया क्योंकि इससे खाद्य आपूर्ति पर दबाव बढ़ने लगा। खेती के अधीन क्षेत्र और पैदावार में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि करने के प्रयास किए गए। जिन क्षेत्रों में भूमि की अधिकता थी खेती के तरीकों में शायद ही कोई परिवर्तन आया। प्रति एकड़ पैदावार में भी कोई खास वृद्धि नहीं हुई। फिर भी कुछ क्षेत्रों में भूमि का गहन उपयोग किया गया। खाद की कमी कृषि की सबसे बड़ी कमजोरी थी।

आल्प्स और पीरेनिस और पूर्वी यूरोप के अपेक्षाकृत ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रामीण

अर्थव्यवस्था पशुपालन पर निर्भर थी। अनाज उत्पादक क्षेत्र से परे क्षेत्रों में पशुपालन प्राथमिक पेशा था। स्कैंडिनेविया, पूर्वी यूरोप के मैदानी क्षेत्रों, स्पेन और बालकन राज्यों के घास के मैदानों में बड़ी संख्या में पशु रखे जाते थे। उत्तरी यूरोप में डेयरी उत्पादन शुरू किया गया। सदी के अंत तक दूध से बने उत्पाद सुदूर बाजार तक पहुंचने लगे। यूरोप के कुछ क्षेत्रों में ग्रामीण उत्पादन में क्षेत्रीय विशिष्टीकरण दिखा। इंगलैंड, फ्रांस के आल्प्स क्षेत्रों और इटली और स्पेन के कुछ क्षेत्रों में भेड़ और पशुपालन अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित हो गया। जानवरों का मौसमी प्रवास स्पेन से अधिक संगठित कहीं भी नहीं था। कस्तील का अधिकांश घास का मैदान भेड़ के लिए चारागाह में तबदील कर दिया गया था। इनके ऊन न केवल स्थानीय मेलों और मेदिना डेल कैंपों में बेचे जाते थे बल्कि फ्लैंडर्स भी भेजे जाते थे। कुछ भागों में जो किसान विपणन योग्य ज्यादा अधिशेष उत्पन्न कर रहे थे, उन्होंने वाणिज्यीकरण का अनुभव किया। अधिकांश स्थानों में किसानों द्वारा बिक्री से प्राप्त धन को या तो दैनिक उपयोग की उन वस्तुओं की खरीद के लिए खर्च किया जाता था जो स्थानीय स्तर पर नहीं बनती थीं अन्यथा वे इसका व्यय कर अदायगी में करते थे। फर्नेंद ब्रोदेल के अनुसार भूमध्यसागरीय कृषि ने लोगों की न केवल आजीविका सुनिश्चित की बल्कि उन्हें निर्यात के लिए बहुत महंगी चीजें मुहैया कराईं, जैसे कच्चा रेशम, रसायन फल और शराब के अलावा केसर, जीरा, किशमिश और जैतून का तेल। बहरहाल भूमध्यसागर में निचले देशों के समान खेती का कोई रूप नहीं नजर आता था। ब्रोदेल के शब्दों में यहां किसानों और जमींदारों के बीच 'सख्त रूढ़िवादी ढांचों की दुनिया' बनी रही और अधिकांश कृषि उत्पादन मौद्रिक अर्थव्यवस्था से बाहर रहा।

सोलहवीं सदी में ग्रामीण परिवेश में शराब का उत्पादन एक विशिष्ट आर्थिक गतिविधि बन गया। इसके पहले यह छिटपुट रूप से इंगलिश मिडलैंड्स, फ्लैंडर्स और ब्रैंडेनबर्ग में उत्पादन किया जाता था लेकिन इन क्षेत्रों की जलवायु इसके अनुकूल नहीं थी। जैसा कि दक्षिणी फ्रांस और भूमध्यसागर से आने वाली शराब अपेक्षाकृत सस्ती थी, इसलिए इस क्षेत्र से आने वाली शराब का उत्तरी अंगूर के बागों पर कब्जा था। दक्षिणी शराब के आयात का भी सैक्सनी, पोमेरैनिया और प्रशा पर असर पड़ा जहां निर्यात के लिए अन्न उत्पादन करना लोकप्रिय हो रहा था। दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस, रोम और राइन के आसपास के क्षेत्र और भूमध्यसागर के तटीय द्वीप शराब उत्पादन के सबसे बड़े वाणिज्यिक केंद्र बन गए।

ऐसा लगता है कि दो वजहों से यूरोप के अधिकांश भागों में कृषि का वाणिज्यीकरण और कृषि उत्पादों का व्यापार सीमित रहा। पहली वजह थी बढ़ी ग्रामीण आबादी। इससे जोत का बंटवारा हो गया और ग्रामीण आबादी में गरीबी बढ़ी। ब्रोदेल कहते हैं कि मध्य युग के अंत में किसानों की हालत दिन-ब-दिन खराब हो रही थी। उनके अनुसार किसानों के पास अनाज के अतिरिक्त कुछ भी खरीदने के लिए धन नहीं था। नतीजतन मांस की खपत लंबे समय तक कम रही। दूसरी वजह थी पट्टेदारी की स्थिति। यह कृषि संबंधी

प्रयोगों में बाधक थी और वाणिज्यिक उत्पादन के लिए भूमि में परिवर्तन को रोकती थी। केवल पश्चिमोत्तर यूरोप में ही बुर्जुआ भूपतियों द्वारा ही सफल प्रयोग किए गए और इससे खेती का विकास हुआ।

कीमतों में वृद्धि, बढ़ती हुई आबादी, पंद्रहवीं सदी के सामंती युद्ध और कुलीन वर्ग की महंगी जीवन-शैली के परिणामस्वरूप कम से कम पश्चिमोत्तर यूरोप में जागीरदारी प्रथा का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। मध्य युग के उत्तरार्द्ध के अस्थिर हालात में किसान और भू-स्वामी दोनों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सोलहवीं सदी के आरंभ में भूमि काश्तकारी की स्थिति में तेजी से बदलाव आ रहा था। कई स्थानों पर जागीरदारों की दिमेन भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया गया जिस पर मजदूर किसान खेती करते थे। ये छोटे किसानों को दे दिए जाते थे और इसके बदले धन या वस्तु के रूप में लगान लिए जाते थे। इस नई स्थिति में काश्तकारी के उस रूप को बड़े पैमाने पर अपनाया गया जिसे मेटायेज कहा जाता था। इस व्यवस्था के तहत भूमि-मालिक कृषक को भूमि, बीज और उपकरण मुहैया कराते थे और बदले में फसल का एक हिस्सा लेते थे। कभी-कभी यह दो तिहाई होता था। इस प्रकार की खेती का इटली और फ्रांस में व्यापक प्रसार हुआ। कई अन्य स्थानों में जमीन एक निश्चित समय के लिए निश्चित लगान पर पट्टे पर दी जाती थी। इसमें अकसर किसानों पर कुछ दासत्व संबंधी बाध्यता भी होती थी। वाणिज्यिक रूप से उन्नत कुछ क्षेत्रों में प्रतिकूल स्थितियों ने पारंपरिक जमींदारों को अपनी कुछ जमीन बेचने के लिए मजबूर कर दिया। कुछ महत्वाकांक्षी किसानों ने उनकी जमीन सस्ते में खरीद ली या वे लंबे पट्टे पर लाभकारी शर्तों पर जोतदार बन गए। बाद में ये धनी किसानों के वर्ग के रूप में उभरे, जिन्हें छोटे जमींदार (योमेन) के रूप में जाना जाने लगा। कुछ मामलों में नगरों या बाजार के आसपास की जमीन शहरी बुर्जुआ वर्ग द्वारा खरीदी जाती थी। इसके पीछे उनका उद्देश्य जमींदार का दर्जा पाने का होता था।

सोलहवीं सदी के आरंभ में भूमि का स्वामित्व ज्यादातर सामान्य अभिजात वर्ग या चर्च के हाथों में था। बड़ी-बड़ी जागीरें थीं लेकिन इनमें से अधिकांश मठों से छीनी गई जमीन से बनी थीं। प्रोटेस्टेंट राज्य, जर्मनी, स्कैंडिनेविया और स्विस प्रांतों में चर्च की जमीन का स्वामित्व सामान्य जन के हाथों में चला गया। वहीं स्पेन और खास तौर पर दक्षिणी मेसेटा में *रिकंक्विस्टा* की नीति के जरिए अधिकांश भूमि धार्मिक संस्थाओं के हाथों में केंद्रित थी। फिर भी पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप में बड़ी जागीरों को तोड़कर छोटे जोतों में और श्रम सेवाओं को मौद्रिक लगान में तबदील करने की प्रवृत्ति थी। स्पेन इसका अपवाद था। पूर्वी और मध्य पूर्व यूरोप में इसकी उलटी प्रवृत्ति देखी जा सकती है। पोलैंड, हंगरी और बोहेमिया में किसानों पर लगान बकाया काफी बढ़ गया और सोलहवीं सदी के आने वाले वर्षों में उनकी गमनशीलता बहुत सीमित कर दी गई। किसानों के स्वतंत्र खेत मालिकों द्वारा छीन लिए गए और इन्हें *दिमेन* फार्म्स में मिला दिया गया। स्वतंत्र किसान वर्ग को कृषि दास की अवस्था में ला दिया गया। कई लेखकों ने इस प्रवृत्ति को 'दूसरी कृषि दास प्रथा' कहा है। जेराम ब्लुम इन घटनाओं को इस क्षेत्र के राजनीतिक और सामाजिक हालात का नतीजा मानते हैं। वह खास तौर पर इन राज्यों में सामंत वर्ग पर शासकों की पूरी निर्भरता और केंद्रीय सत्ता की कमजोरी को इसका कारण समझते हैं। इससे कुलीन सारी शक्तियां अपने में केंद्रित करने में सक्षम हो गए। मेरियन मैलोविस्ट इन बदलावों को पश्चिमी यूरोप के बाजारों के लिए पदार्थों की बढ़ती मांग से जोड़कर देखते हैं। कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि, पश्चिमी यूरोप में खाद्य पदार्थों की कमी और बढ़ती हुई आबादी के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक मुनाफा कमाना इस प्रवृत्ति की प्रेरक शक्ति थी।

सोलहवीं सदी में, इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी में कृषि पर भारी संख्या में किताबें प्रकाशित हुईं। जर्मनी में मार्टिन ग्रोसर, जॉन कॉलर और कोनरैड हर्सबैक, फ्रांस में ओलिवियर दी सेरेस और जॉन लिबा और इंगलैंड में एंथनी फिज़रबर्ट और थॉमस टसर ने कृषि और पशुपालन पर प्रमुख किताबें लिखीं। टसर की किताब के तेरह संस्करण प्रकाशित हुए। इससे पता चलता है कि सोलहवीं सदी में कृषि विज्ञान विषयक किताबों का जबरदस्त पाठक वर्ग था।

स्लिचर वैन बाथ ने डच कृषि व्यवस्था का विस्तार से अध्ययन किया है। वह त्रि-चक्रीय फसल पद्धति का उल्लेख करते हैं जो सोलहवीं सदी में नीदरलैंड्स में विकसित हुई। एक अन्य पद्धति अनेक फसलों को अदल-बदल कर लगाने की थी। इससे जमीन को चौथे, पांचवें या छठे वर्ष में भी परती छोड़नी नहीं पड़ती थी। दूसरी पद्धति दो वर्षों तक अन्न उपजाने और उसके बाद एक साल परती रखने और तीन से छह वर्षों तक चारा के लिए छोड़ने की थी। तीसरी पद्धति फसल को अदल-बदल कर लगाने की थी। इसमें चारा फसल परती वाले वर्ष में उगाई जाती थी। यह अठारहवीं सदी की इंगलैंड की फसल पद्धति का पूर्वाभास देती है। धीरे-धीरे ये पद्धतियां पूर्वी क्षेत्रों में भी अपनाई गईं। फिर भी ये कृषि पद्धतियां नीदरलैंड्स में खाद्यान्नों की तेजी से बढ़ती शहरी मांग को पूरा नहीं कर सकीं और बाल्टिक के अन्न व्यापार से इस कमी को पूरा किया जा सका।

इंगलैंड में पंद्रहवीं सदी में खेतों में बाड़ लगाने की प्रथा का अनुसरण किया जा रहा था। सोलहवीं सदी के आरंभ में इसमें तेजी आ गई। यह खेत जोतने के बजाए विस्तृत चारागाह बनाने की दिशा में बदलाव से जुड़ा था। पंद्रहवीं सदी में अनाज की कीमतों में गिरावट और कृषि पर ऊपरी लागत में वृद्धि के कारण पशुपालन में तजी आ रही थी। एक अनुमान के मुताबिक 1485–1607 के बीच मिडलैंड में 21.1 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में घेरा बंधा था (जॉन ई. मार्टिन)। 1550 के दशक तक आते-आते ऊन की तुलना में अनाज में अधिक मुनाफा, बढ़ती आबादी के दबाव के कारण बाड़ आंदोलन का विरोध और बाड़ों के खिलाफ सरकार के रुख के कारण अन्न उत्पादन के पक्ष में स्थिति पलट गई (एबेल, पृ. 114)। सोलहवीं सदी के मध्य से जोतने योग्य भूमि पर लगान में चारागाहों और घास के

मैदानों की तुलना में तेजी से वृद्धि हुई। इससे इंगलैंड के बजाए आयरलैंड में पशुपालन अधिक किया जाने लगा।

बहरहाल काफी लंबे समय तक इतिहासकारों ने पूरी अर्थव्यवस्था में केवल शहरी शिल्प पर ध्यान केंद्रित रखा। लेकिन ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गैरकृषि वर्ग के महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती। स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक प्रकार के शिल्प थे। ये शिल्प सदियों से मौजूद थे। लेकिन सोलहवीं सदी में ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग का प्रसार हुआ। बहुत से नए शहर औद्योगिक उत्पादन के लिए जगह की कमी के कारण या अन्य कारणों से जैसे कच्चे माल की कमी या ऊर्जा के स्रोतों जैसे जल या ईंधन या श्रम की समस्या के कारण अपने उत्पादन पड़ोस के गांवों में कर रहे थे। इनमें ढुलाईखाना, तेल मिल, पाऊडर मिल, आटा मिल, पत्थर की पिसाई और अनाज की पिसाई मिल, पेपर वर्क्स, शोधक कारखाने, खनन और कई अन्य कार्य शामिल थे। ये ग्रामीण उद्योग पूरे यूरोप में फैले हुए थे लेकिन इंगलैंड और उत्तरी यूरोप में ये अधिक महत्वपूर्ण बन गए। आम तौर पर संपूर्ण ग्रामीण केंद्र शहरी व्यापारियों के नियंत्रण में आ गए। ये ग्राम समूह सस्ते सूती और सिल्क के कपड़ों की नई किस्मों के प्रमुख केंद्र बन गए। इनका दूरदराज के क्षेत्रों के शहरी बाजारों पर दबदबा हो गया।

इस प्रकार रगीरो रोमानो के शब्दों में, कृषि 'मूल्य वृद्धि और जनसंख्या विस्तार' के प्रति संवेदनशील बनी रही। मूल्य वृद्धि से फसलों और जमीन के मूल्य बढ़े, वहीं जनसंख्या वृद्धि से एक अच्छे बाजार की गारंटी और श्रमिकों की वृद्धि सुनिश्चित हुई ताकि उत्पादन में वृद्धि की जा सके। प्रौद्योगिकी उन्नत नहीं होने के कारण कृषि का विकास खेती के अधीन अधिक से अधिक क्षेत्र को लाकर किया गया। यूरोपीय कृषि में बंजर भूमि, दलदल, जंगल की जमीन के उपयोग और गहन खेती के जरिए व्यापक विस्तार किया गया। व्यापार के विस्तार से हर क्षेत्र को अपनी क्षेत्रीय विशिष्टता का उपयोग करने का प्रोत्साहन मिला। हर जगह स्थिति समान नहीं थी। सोलहवीं सदी से क्षेत्रों के बीच अंतर बढ़ने लगा था।

शहरी अर्थव्यवस्था

सोलहवीं सदी के आरंभ के वर्षों को शहरी उद्योग के विस्तार का निर्णायक काल माना जाता है। इस सदी में कृषि और उद्योग के बीच गहरा संबंध था। जैसा कि कोलमैन कहते हैं, इस समय के अधिकांश उद्योगों में जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादों का सीधे प्रसंसाधन किया जाता था। उद्योग पूंजी प्रधान होने के बजाए श्रम प्रधान थे। मध्य युग की तुलना में इस सदी में विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन नहीं देखे जा सकते थे। तकनीकी वही थी लेकिन ढांचे और संघटन में थोड़ा बदलाव आया था। बहरहाल वास्तविक परिवर्तन के लिए अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों तक इंतजार करना पड़ा। खनन और कुछ धातुकर्म को छोड़कर, उत्पादन की इकाइयां छोटी थीं। ये कमोबेश छोटी कार्यशालाओं के समान थीं जहां मुट्ठीभर कारीगर काम करते थे। अधिकांश विनिर्माण इकाइयों में पूंजी और श्रम का अनुपात न्यूनतम था।

पंद्रहवीं सदी के मध्य से लगातार जनसंख्या वृद्धि के कारण मूलभूत वस्तुओं की मांग बढ़ गई, हालांकि श्रम बाजार मंदा रहा। इसकी वजह थी श्रमिकों की अधिक उपलब्धता। यूरोप के कई भागों में मजदूरी बहुत घट गई। कई विद्वान मानते हैं कि तेरहवीं सदी के बाद से कारीगरों की वास्तविक आय इतनी कम कभी नहीं थी। श्रमिकों की प्रचुर उपलब्धता के कारण श्रम बचाने की युक्तियों और नवपरिवर्तन को प्रोत्साहन नहीं मिला। सामंती ढांचे की मौजूदगी, लगातार मूल्य वृद्धि, परिवहन की समस्या और जनसामान्य की कम क्रय शक्ति बड़े उद्योगों के विकास में आने वाली बड़ी रुकावटें थीं। फिर भी औद्योगिक विस्तार की दृष्टि से सोलहवीं सदी को जे.एफ. नेफ औद्योगिक क्रांति का काल मानते हैं। इसके पक्ष में उन्होंने तीन तर्क दिए : (क) इस दौरान कोयले का उत्पादन 14 गुना बढ़ गया। यह 1550 के दशक के 17,000 टन प्रति वर्ष से बढ़कर 1680 के दशक में 25,00,000 टन हो गया। इससे शहरों और पोत निर्माण को बढ़ावा मिला; (ख) इसके परिणामस्वरूप इस्पात उद्योग का उदय हुआ और (ग) इससे उत्पादन की नई पद्धति और नई प्रौद्योगिकी की शुरुआत हुई। अधिकांश विद्वान उनके इस विचार से सहमत नहीं हैं। 'क्रांति' शब्द पर उनकी सबसे अधिक आपत्ति है क्योंकि न तो प्रौद्योगिकी में न ही विनिर्माण की प्रक्रिया और संघटन में कोई मौलिक परिवर्तन देखा जा सकता था। यूरोप के कुछ भागों में सोलहवीं सदी के मध्य से, खास तौर पर धातु और खनिजों के उत्पादन के जबरदस्त विकास का एक सुस्पष्ट दौर आया। वात भट्टी (ब्लास्ट फरनेस) के आने से लोहे के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। इससे अनेक उद्योगों जैसे आयुध, पीतल और तांबे के बर्तन और शीशा आदि को बढ़ावा मिला। वस्त्र उत्पादन में भी वृद्धि हुई और इसके साथ-साथ फिटकिरी और रंजक पदार्थों का भी उत्पादन बढ़ा। सत्रहवीं सदी के आरंभ से इस आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ गई। फ्रांस में राज्य के कानूनों के तहत खास तौर पर 1581 और 1597 में व्यापारियों के आवश्यकता से अधिक कच्चे माल इकट्ठा करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। शिल्प संघों के आचरण के निर्देश जारी किए गए और अनेक विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन के लिए एकाधिकार प्रदान किए गए। नीदरलैंड्स के दक्षिणी राज्य स्पैनिश शासक के खिलाफ युद्ध से और शेल्ट नदी के बंद होने से गंभीर रूप से प्रभावित हुए। केवल उत्तर के संयुक्त प्रांतों में आर्थिक विकास सत्रहवीं सदी के अंत तक जारी रहा।

पूरी सोलहवीं सदी के दौरान कृषि के बाद कपड़ा उद्योग में सबसे अधिक लोग लगे थे। इस उद्योग में उत्पादित वस्तुओं का कुल मूल्य भी अन्य उद्योग के किसी क्षेत्र से अधिक था। संघटन की दृष्टि से इस अवधि में इस उद्योग की दो प्रमुख प्रवृत्तियां थीं। एक शहरी शिल्प के रूप में अपने घरों या कार्यस्थलों में काम करने वाले कुशल कारीगरों पर इसकी निर्भरता जारी रही। चूंकि यह पारंपरिक व्यापारी संघों के अधीन था इसलिए कार्यशालाओं

में नई प्रौद्योगिकी लगाने या सुधार करने की संभावना कम ही थी। दूसरी प्रवृत्ति वस्त्र उत्पादन के ग्रामीण क्षेत्र में स्थानांतरित होने की थी। यह उद्योग ग्रामीण कामगारों को अंशकालिक रोजगार मुहैया कराता था। इस प्रकार सूत कातना एक प्रकार से ग्रामीण रोजगार बन गया। शहरी बुनकर भी इसकी आपूर्ति के लिए पड़ोस के गांवों पर निर्भर करते थे। इससे ग्रामीण आबादी को अतिरिक्त आय प्राप्त होती थी खास तौर पर इंगलैंड, जर्मनी और नीदरलैंड के ग्रामीण इलाकों में। इससे कृषि क्षेत्र की उन्नति में भी सहायता मिली। यूरोप के कपड़ा उद्योग ऊनी, सन (लिनेन), सूती, मिश्रित सामग्री और कुछ अन्य विलासिता संबंधी कपड़ों का उत्पादन करते थे।

निचले देशों में सोलहवीं सदी के आरंभ तक फ्लैंडर्स एक महत्वपूर्ण विनिर्माण केंद्र था। इसके पारंपरिक कपड़ा उद्योग में लगातार गिरावट आ रही थी। इसका स्थान 'नए वस्त्रों' ने ले लिया था। हालांकि 1540 के आसपास यह संपन्नता भी खतम हो गई और 1560 के दशक से वस्त्र उद्योग निरंतर युद्ध के कारण पूरी तरह बरबाद हो गया। घटता बाजार और राजनीतिक अस्थिरता इस उद्योग के पतन के मुख्य कारण थे। फ्लेमिश कपड़ा उद्योग के पतन के परिणामस्वरूप पूर्व में ब्राबांत और उत्तर में हॉलैंड में औद्योगिक उदय हुआ। कुछ कुशल कारीगरों के नए केंद्रों में चले जाने, 1568 में स्पेन के खिलाफ युद्ध छिड़ने और निचले देशों के विभाजन, स्पैनिश नियंत्रण से अलग संयुक्त प्रांतों के निर्माण और दक्षिण में स्पेन द्वारा नियंत्रित राज्यों के निर्माण से नीदरलैंड्स का उदय हुआ। अभी तक हॉलैंड स्थित उद्योग केवल स्थानीय मांग को पूरा कर रहे थे। लीडेन वस्त्र निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था। यह सत्रहवीं सदी तक आते-आते यूरोप में कपड़ा उत्पादन का प्रमुख केंद्र बन गया। इस शहर में कारखाने खुल गए जिसमें बीस कारीगर तक काम करते थे और स्पैनिश ऊन कातते थे। यह उद्योग कच्चे माल के लिए और तैयार माल की बिक्री के लिए निर्यात पर निर्भर था। इंगलैंड में इसी प्रकार के उद्योग के उदय और ऊन के निर्यात पर इंगलैंड के निषेध से लीडेन के कपड़ों की किस्मों के विकास को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा।

फ्रांस और निचले देशों में ऊन उद्योग का विकास मध्ययुग में ही विकसित हो गया था। वहीं लिनेन का उत्पादन मध्य यूरोप में जारी था। सोलहवीं सदी के दौरान निचले देशों से कुशल कारीगरों के आप्रवास और राज्य की नीतियों के फलस्वरूप सैक्सनी के ऊन उद्योग का प्रसार हुआ लेकिन वास्तविक विकास अठारहवीं सदी में ही हुआ। बोहेमिया और साइलेसिया में लिनेन का उत्पादन पुराने तरीके से होता था लेकिन सत्रहवीं सदी के मध्य से जब इसका संघटन पूंजीपति व्यापारियों ने अपने हाथों में ले लिया तो इसका बहुत विकास हुआ।

मध्य काल में उत्तरी इटली, टस्कनी और कैटेलोनिया प्रमुख वस्त्र निर्माण केंद्र थे। पंद्रहवीं सदी में इनका पतन हो गया। पुनः थोड़े समय के लिए ये सोलहवीं सदी में पुनर्जीवित हुए। यद्यपि स्पेन सबसे बढ़िया ऊन पैदा करता था लेकिन इसके संघटन का

स्वरूप व्यापार संघ का था और इसलिए इसका सीमित विकास हुआ। इतालवी नगर-राज्य अपने वस्त्र उद्योग के लिए जाने जाते थे। इसका बाजार पूरे यूरोप में था। इटली के उत्तरी क्षेत्रों में बुनकरों और कारीगरों की बड़ी तादाद थी। रेशम की बुनाई विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) कार्य का एक महत्वपूर्ण भाग था। यह शिल्प इटली और स्पेन के कई भागों में काफी लोकप्रिय था। यह वस्त्र उद्योग का सबसे कठिन हिस्सा था क्योंकि रेशम का उत्पादन एक जटिल और लंबी प्रक्रिया थी। रेशम का कीड़ा बहुत नाजुक होता है जिसका बहुत अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। चूंकि मलबेरी की खेती के लिए एक विशेष जलवायु की आवश्यकता थी और यह मौसमी पेशा था, इसलिए सालों भर बड़ी संख्या में मजदूर को इस काम में लगाए रखा नहीं जा सकता था। इस क्षेत्र में पूंजी निवेश की जरूरत थी। इसका बाजार सीमित और काफी लोचदार था। यह उद्योग यूरोप के कुछ ही भागों में सीमित था। सोलहवीं सदी में वेनिस इसका एक महत्वपूर्ण केंद्र बनकर उभरा लेकिन सदी के अंत से इसका पतन शुरू हो गया। इटली के बाहर, फ्रांस में लियों और स्विटजरलैंड में ज्यूरिक को *फ्रेंच ह्युनॉट्स* और निचले देशों से शरणार्थियों के आगमन से और इतालवी औद्योगिक केंद्रों के पतन से बहुत लाभ हुआ। यहां से जेनेवा, बेसिल, टुअर्स और फ्रांस के उत्तरी भागों में रेशम बुनने का काम विकसित हुआ। रेशम उद्योग के उदय में राज्य के सहयोग ने अहम भूमिका निभाई।

पूरी सोलहवीं सदी के दौरान विनिर्माण और खनन कार्यों का विस्तार हुआ लेकिन इससे उत्पादन की फैक्ट्री प्रणाली शुरू नहीं हुई। हालांकि व्यापार की मात्रा बढ़ी, आबादी बढ़ी, मूल्यों में निरंतर वृद्धि हुई लेकिन यूरोप की विनिर्मित वस्तुओं की व्यापक मांग नहीं थी क्योंकि यूरोप का अधिकांश भाग अभी भी सामंतवाद के प्रभाव में था। निवेश के लिए पूंजी की कमी थी और प्रबंधन की अवधारणा अपरिपक्व थी । राज्य के शासन का ढांचा सामंती मानकों के भीतर उभरा था और इंगलैंड और फ्रांस सहित कई स्थानों पर नई प्रौद्योगिकी और संघटन के नए रूपों को अपनाने पर सरकार द्वारा पाबंदी लगा दी गई थी। पूंजी प्रधान विधियां अस्वीकार की जाती थीं और राज्य के कानून व्यापार संघ के संगठन को जारी रखने को तरजीह देते थे। इन प्रतिबंधों के बावजूद विनिर्माण क्षेत्र ने अपनी औद्योगिक गतिविधियां ग्रामीण क्षेत्रों में ले जाकर इन विनियमों से निकलने की कोशिश की। इससे उन क्षेत्रों में ग्रामीण कुटीर उद्योग का विकास हुआ जहां पूंजीवादी तत्व उत्पादन पर हावी होने लगे। यहां औद्योगिक संक्रांति के पहले संकेत देखे जा सकते हैं।

यूरोप में सोलहवीं सदी को आर्थिक इतिहासकारों द्वारा महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह अटलांटिक अर्थव्यवस्था के उदय का समय था। इसका उदय औपनिवेशिक साम्राज्य बनने के कारण व्यापार क्षेत्र और व्यापार मार्गों में बदलाव के कारण हुआ था। नए सामुद्रिक व्यापार मार्गों की खोज के साथ ही जेनोआ या वेनिस से होकर कुस्तुनतुनिया के जरिए एशिया से यूरोप को आने वाले व्यापार मार्ग का महत्व खतम हो गया। इससे

अटलांटिक तट के किनारे स्थित राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं को फायदा हुआ। इस बदलाव का पहला संकेत निचले देशों में एंटवर्प के उदय में देखा जा सकता है।

एंटवर्प का उदय

फर्नेंद ब्रोदेल के अनुसार, 'पूंजीवाद के इतिहास में एंटवर्प का जीवन, यद्यपि संक्षिप्त, फिर भी एक महत्वपूर्ण और कुछ मामलों में मौलिक घटना है' (द *पर्सपेक्टिव ऑफ दि वर्ल्ड*, पृ. 154)। यूरोप में बंदरगाह-नगरों के उत्थान और पतन का व्यापार मार्गों के महत्व से गहरा संबंध था जो राजनीतिक, आर्थिक और भौगोलिक कारणों से बदलता रहता था। एंटवर्प का उत्थान भी इसी का एक उदाहरण है। एंटवर्प ने अटलांटिक तट पर ब्रुगेस का और भूमध्यसागरीय तट पर वेनिस का स्थान ले लिया था। बाद में स्वयं इसका स्थान एम्स्टर्डम ने ले लिया। यह नीदरलैंड्स की राजधानी थी। एंटवर्प निचले देशों (वर्तमान बेल्जियम और हॉलैंड) में स्थित था। पुर्तगाली और स्पैनिश औपनिवेशिक साम्राज्यों के बनने से व्यापार मार्ग भूमध्यसागरीय नगरों से बदलकर अटलांटिक तट हो गया। जैसा कि एंटवर्प शेल्ट नदी के मध्य स्थान पर अवस्थित था, इसलिए यूरोप की वाणिज्यिक दुनिया में इसकी प्रमुख भूमिका होना अवश्यंभावी था।

एंटवर्प के उत्थान में अनेक तत्वों का योगदान था। ये तत्व अप्रत्यक्ष रूप से अटलांटिक अर्थव्यवस्था के उत्थान का संकेत देते हैं। सोलहवीं सदी के दौरान यह नगर 'दुनिया की वाणिज्यिक राजधानी' के रूप में जाना जाता था। इसकी भौगोलिक अवस्थिति ही इसके उत्थान का एकमात्र कारण नहीं था क्योंकि इस पत्तन-नगर का निर्माण भीतर से नहीं हुआ था। जैसा कि पहले ही कहा गया यह विश्व व्यापार मार्ग में बदलाव का नतीजा था जो अटलांटिक अर्थव्यवस्था के साथ इसका गहरा संबंध स्थापित करता था। एंटवर्प के लिए वास्तविक तेजी पंद्रहवीं सदी के अंत में आई जब वेनिस के व्यापारियों ने एशिया से पुर्तगाल में होने वाले मसाला व्यापार पर अपना एकाधिकार खो दिया। इस परिवर्तन का पहला संकेत 1501 में देखा जा सकता है जब दालचीनी और काली मिर्च से लदे पुर्तगाली जहाज एंटवर्प पहुंचे। 1508 में पुर्तगाली शासक ने लिस्बन के *कासा दा इंडिया* की एक शाखा एंटवर्प में खोली जिसे *फीतेरा डि फ्लैंडर्स* कहा गया। एंटवर्प में पुर्तगाली और जर्मन व्यापारियों के बीच गहरा व्यापारिक संबंध स्थापित हो गया। एशिया के साथ मसाला व्यापार को बनाए रखने के लिए (एशियाइयों को यूरोपीय वस्तुओं में रुचि नहीं थी और उन्हें सोना या चांदी के रूप में भुगतान करना पड़ता था) पुर्तगालियों को जर्मनी से तांबा और धातु की वस्तुओं की आवश्यकता थी। इससे उन्हें मध्य यूरोपीय खदानों से काफी मात्रा में चांदी का आयात करना पड़ता था। जर्मनवासियों ने हंगरी की तांबा खानों का दोहन और इंडीज में पुर्तगाली व्यापार का वित्तपोषण आरंभ किया। ये अधिकांश पुर्तगाली निवेश फ्यूगर्स घराने

के हाथों में थे। इससे इतिहासकार यह कहते हैं कि 'फ्यूगर्स का युग एंटवर्प का युग था।' सोलहवीं सदी के आरंभ में यह शहर जर्मन वस्तुओं का प्रमुख बाजार बन गया। एंटवर्प को इंगलैंड के साथ अपने व्यापार से भी लाभ हुआ। वणिक साहसिकों की इंगलिश कंपनी ने अपनी ऊन के लिए इस शहर में एक केंद्र स्थापित किया जहां वे वस्त्र बनाते थे और यूरोप के अन्य हिस्सों में बेचते थे। 1500 और 1540 के बीच एंटवर्प को इंगलैंड द्वारा किया जाने वाला निर्यात दोगुना हो गया। उत्तर से कृषि उत्पाद, बाल्टिक से अनाज, फ्रांस से शराब, गोऊदा से पनीर, जीलैंड से मछली और समुद्री खाद्य पदार्थ, स्पेन से मेरिनो ऊन और अमरीकी उपनिवेशों से कई अन्य उत्पाद यहां आने लगे। एंटवर्प के बाजार जीवंत हो उठे। यहां विदेशी व्यापारियों की संख्या कुल आबादी का 15 प्रतिशत थी। सचमुच एंटवर्प पुनर्निर्यात व्यापार का एक प्रमुख केंद्र बन गया। सभी प्रमुख व्यापार मार्ग यहां आकर मिलते थे। एंटवर्प के महत्व के कारण पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन (अनेक बढ़त के बावजूद) प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र नहीं बन पा रहा था। एंटवर्प को विशाल स्पैनिश साम्राज्य का हिस्सा होने का भी काफी फायदा हुआ। स्पेन एंटवर्प को न केवल ऊन बल्कि कई अन्य विदेशी वस्तुएं भेजता था जैसे मैक्सिको से किरमिज, अमरीकी डाई-वुड्स और केनरीज प्रायद्वीपों से चीनी। यह एंटवर्प के माध्यम से उत्तरी यूरोप के अनेक उत्पादों जैसे लकड़ी, शहतीर, तारकोल, पोत और बाल्टिक से गेहूं व अन्य कृषि उत्पाद और लिनेन और ऊनी वस्त्र जैसी विनिर्मित वस्तुएं प्राप्त करता था। अधिक आयात से उत्पन्न घाटे को अमरीकी चांदी को एंटवर्प निर्यात करके पूरा किया जाता था। अतः एंटवर्प का उत्थान मुख्य रूप से पुर्तगाली और जर्मन संबंधों और बाद में स्पैनिश व्यापार के कारण हुआ।

एंटवर्प को अपनी उन्नति में जर्मन व्यापारियों और बैंकरों के साथ गहरे संबंध का लाभ मिला। यहां जर्मन निवेश वेनिस की कीमत पर किया गया था और लिस्बन इसका माध्यम था। जर्मनों ने बड़े पैमाने पर तांबा और चांदी वेनिस के बजाए लिस्बन भेजना शुरू कर दिया था। वैन डेर वी के अनुसार, जैसा कि ब्रोदेल द्वारा उद्धृत किया गया है, 1502-03 में फ्यूगर्स द्वारा एंटवर्प को हंगरियन तांबे का केवल 24 प्रतिशत भाग निर्यात किया गया था जो 1508-09 में बढ़कर 49 प्रतिशत पहुंच गया। वहीं वेनिस का हिस्सा घटकर केवल 13 प्रतिशत रह गया। जर्मनी द्वारा पुर्तगालियों को चांदी का निर्यात एंटवर्प के लिए फायदेमंद सिद्ध हुआ। अनेक जर्मन वाणिज्यिक फर्मों ने एंटवर्प में अपने कार्यालय खोलने शुरू कर दिए। फ्यूगर्स घराने के अलावा म्यूटिंग्स (1479), हॉक्स्टेटर्स (1486) और वेल्सर्स (1509) अन्य महत्वपूर्ण फर्में थीं। फ्यूगर्स ने एंटवर्प के साथ अपने व्यापार से काफी लाभ कमाया। थोक और खुदरा व्यापार यहां की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण पहलू था। कई महत्वपूर्ण व्यावसायिक फर्मों ने अपने औद्योगिक उत्पादों के स्थायी हॉल या प्रदर्शन केंद्र बना रखे थे।

एंटवर्प का उत्थान इसलिए भी हुआ क्योंकि यह बैंकिंग और वाणिज्यिक गतिविधियों का बहुत महत्वपूर्ण केंद्र था। पंद्रहवीं सदी के अंत तक एंटवर्प में दो सराफा बाजार

विकसित हो चुके थे। पुराने सराफा में प्रमुख रूप से वस्तु व्यापार होता था। इसे बुल स्ट्रीट कहा जाता था। वहीं 1531 में नया सराफा बाजार खुला जो मुख्य रूप से एक वित्तीय केंद्र था। यहां विदेशी निवेशक विभिन्न प्रकार की सट्टेबाजी करते थे। सट्टेबाजी और वित्तीय सौदे ही विदेशी व्यापार संघों को अपना व्यापार करने के लिए आकर्षित करते थे। एक अनुमान के मुताबिक पंद्रहवीं सदी के मध्य में औसत पूंजी व्यवसाय लगभग 4,00,00,000 ड्युकेट्स प्रति वर्ष था। बहुत कम समय के नोटिस पर ऋण की व्यवस्था कराई जाती थी और पुर्तगाल के राजा और इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ सहित अनेक शासकों ने एंटवर्प से बहुत बड़ी राशि कर्ज में ली थी। बड़े-बड़े व्यवसाय संघ और बैंकिंग घराने इस तरह के कर्ज देते थे। नीदरलैंड्स के प्रांत और नगर भी इस शहर में बांड्स बेचते थे। नकली बैंकरों या कर्जदारों द्वारा धोखाधड़ी की घटनाएं भी आम थीं। उदाहरण के लिए गैस्पर डुकी का मामला। सोलहवीं सदी के आरंभ में काली मिर्च और अन्न व्यापार में सट्टेबाजी की जाती थी जिससे अकसर बहुत लाभ होता था। बहरहाल अधिकांश व्यापारी अपने निवेश या उधारी के लिए पारंपरिक और सुरक्षित मार्ग ही चुनते थे। यद्यपि एंटवर्प में अभी बैंकिंग के आधुनिक रूप, साख पत्रों जैसे हुंडी, वचनपत्र और लेखा पद्धतियों का विकास नहीं हुआ था लेकिन इतालवी नगरों में इनका प्रचलन था। विदेशों में यूरोपियों के विस्तार से अंतरराष्ट्रीय व्यापार की गुंजाइश बढ़ गई। व्यापार संगठनों और इसकी पद्धतियों पर इसके दूरगामी प्रभाव हुए। ये घटनाएं यूरोप में पूंजीवाद के विकास के लिए अनुकूल साबित हुईं।

एस.टी. बिंडॉफ (*दि न्यू कैंब्रिज मॉडर्न हिस्टरी*, खंड II, पृ. 52 में) एंटवर्प में अंतरराष्ट्रीय व्यापार को चलाने वाली चार स्थितियों का उल्लेख करते हैं : स्वयं व्यापार की तकनीक; वे शर्तें जिन पर विभिन्न 'राष्ट्र' यहां प्रवेश पाते थे; दो शहरों के मेलों का तंत्र; और राज्य की नीति। व्यापार के विकास से वस्त्र उद्योग जैसे सज्जा उद्योग को बढ़ावा मिला। 1564 में वस्त्र-निर्माण संघ में अकेले 1,600 उस्ताद कारीगर और प्रशिक्षु थे। एंटवर्प में दोहरी-प्रविष्टि, बहीखाता पद्धति और भुगतान के नए तरीके पहले ही अपनाए जा चुके थे। नगर के अधिकारियों ने स्थितियां काफी उदार बना दी थीं जैसा कि 1446 में इंगलैंड के व्यापारियों को दी गई प्रवेश की शर्तों से पता चलता है।

ब्रोदेल के अनुसार एंटवर्प का उत्थान और पतन इससे भी अधिक तीन महत्वपूर्ण दौर से गुजरा। पहला दौर इस क्षेत्र में पुर्तगाली भागीदारी से आरंभ हुआ। लिस्बन के शासक ने जर्मनी के व्यापारियों जैसे वेल्सर्स और हॉक्स्टेटर्स के साथ घनिष्ठ वाणिज्यिक संबंध बना लिया था। मध्य यूरोप के चांदी उत्पादन पर इन व्यापारियों का नियंत्रण था। विस्तार का दूसरा दौर स्पैनिश भागीदारी और 1535 और 1557 के बीच अमरीका से चांदी की आपूर्ति के साथ आरंभ हुआ। और अंतिम दौर कैटो कैंब्रेसिस की संधि (1559) के साथ आई शांति और 1559 से 1568 की संक्षिप्त अवधि के दौरान नीदरलैंड्स और एंटवर्प में हुए उद्योग के विकास के साथ आरंभ हुआ। यह समय एंटवर्प से पुर्तगाल, इंगलैंड और स्पेन की वाणिज्यिक

भागीदारी की वापसी का संकेत था। इस समय से फोकस उद्योग पर हो गया। चूंकि पूंजी इतनी अधिक उपलब्ध थी कि इसका न तो व्यापार में न ही सरकारी ऋणों में पूरी तरह उपयोग हो पा रहा था, अतः इसे छोटे कारखानों में निवेश किया गया। इससे कुछ उद्योगों जैसे लिनेन, चित्रपट और कपड़ा उद्योग का विस्तार हुआ। एंटवर्प प्रिंटिंग उद्योग का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था। प्लांटिंस उस समय का जाना-माना छापाखाना था। यहां बड़े पैमाने पर किताबें और पैंफलेट्स छपती थीं। दुर्भाग्यवश यह औद्योगिक विस्तार लंबे समय तक नहीं चल सका। नीदरलैंड्स में फैली व्यापक अशांति ने यहां की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया जिसका एंटवर्प पर सीधा असर पड़ा।

एंटवर्प का पतन

एंटवर्प की सफलता की कहानी लंबे समय तक नहीं चली। दरअसल सोलहवीं सदी के मध्य तक एंटवर्प अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। यह न केवल यूरोप की बाजार अर्थव्यवस्था बल्कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार का भी केंद्र बन गया था। यूरोप का कोई भी नगर यूरोपीय आर्थिक जीवन में इतनी प्रभावशाली भूमिका अदा नहीं कर सकता था। जिस प्रकार एंटवर्प के उत्थान में बाहरी तत्वों का योगदान था, उसी प्रकार इसके पतन के लिए भी बाहर घटने वाली घटनाएं जिम्मेदार थीं। इसका पतन उतना ही अचानक हुआ, जितना अचानक इसका उत्थान। एंटवर्प की आरंभ से ही कुछ कमियां थीं लेकिन समृद्ध व्यापार के कारण सोलहवीं सदी के आरंभ में ये सामने नहीं आ सकीं। एंटवर्प पर किसी शक्तिशाली शासक का शासन नहीं था। एल्डरमैन के कुछ परिवारों, जो जमींदार अभिजात वर्ग से थे, का सत्ता पर एकाधिकार था। यहां का कोई भी व्यापारी समूह कभी भी अंतरराष्ट्रीय ख्याति का नहीं रहा। इसके पूरे उत्थानकाल में विदेशियों जैसे इंगलिश और हैंसिएटिक व्यापारियों, जर्मनी की फर्मों और फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन और इटली के व्यापारियों का एंटवर्प पर दबदबा था। अपने व्यापार की सुरक्षा के लिए इसके पास शक्तिशाली नौसेना नहीं थी। इसका उत्थान विदेशी व्यापार से जुड़ा था जो कि हॉलैंड, पुर्तगाल, स्पेन, इंगलैंड और जीलैंड के जहाजों के द्वारा किया जाता था। यह विदेशी व्यापारियों का मिलन बिंदु था। इसी से इसकी किस्मत चमकी थी। यह अपनी धार्मिक सहिष्णुता के कारण विभिन्न मतों और क्षेत्रों के व्यापारियों को आकर्षित करने में सफल रहा था। लेकिन इसके उत्थान के बाद यूरोप के अधिकांश भागों में जबरदस्त धार्मिक उथल-पुथल आया। इसका व्यापार मार्गों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और अव्यवस्था फैली। इसके अलावा एंटवर्प के अचानक पतन के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारण भी थे।

1560 के दशक में एंटवर्प जब अपने चरमोत्कर्ष पर था, इसकी आर्थिक समस्याएं शुरू हो चुकी थीं। 1549 में पुर्तगालियों ने पाया कि वे स्पेन से सस्ता और अधिक आसानी

से चांदी प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने एंटवर्प से मसाला व्यापार के एकाधिकार को वापस लेने का निर्णय किया। वहीं जर्मनों ने सीधा लिस्बन और वेनिस का रुख कर लिया। हालांकि उन्होंने अमरीकी चांदी से मिलने वाली स्पर्द्धा को अधिक कठिन पाया। जर्मन क्षेत्र में चांदी के खानों को जारी रखने की लागत भी बहुत बड़ी साबित हो रही थी। इसके बाद इंगलैंड की ओर से आने वाली समस्याएं थीं। अंगरेजी सरकार द्वारा 1550 में चांदी का अवमूल्यन किया गया। परिणामस्वरूप मर्चेंट एडवेंचरर्स ने रिकार्ड मात्रा में एंटवर्प को कपड़ा निर्यात किया। इससे बाजार में एक अस्थायी आधिक्य की स्थिति बन गई। अगले वर्ष इंगलैंड में स्टर्लिंग का पुनर्मूल्यांकन हुआ। इससे कपड़े की कीमतें अचानक बढ़ गईं। एंटवर्प का व्यापार एक दशक तक इससे उबर नहीं सका और इसके बाद नई समस्याएं उठ खड़ी हुईं। आर्थिक मंदी के कारण स्पैनिश आयात भी घट गया और सम्राट (पवित्र रोम साम्राज्य) और फ्रांस के बीच 1552 में हुई लड़ाई से स्थिति और विकट हो गई। 1555-56 में पश्चिमी यूरोप में फसल खराब होने से अनाज की कीमतें भी बढ़ गईं। बाल्टिक से आयातित अनाज के लिए यूरोपीय राज्यों को सामान्य कीमत से तीन से चार गुना अधिक भुगतान करना पड़ता था। इससे वे भारी कर्ज में आ गए। फ्रांस और स्पेन के बीच युद्ध से एंटवर्प के लिए स्थिति और भी जटिल हो गई। 1557 तक स्पेन की सरकार द्वारा सभी कर्ज स्टेट बांड्स में बदल दिए गए जिन्हें *जेरोस* कहा जाता था। कर्ज की अदायगी को स्थगित करने के लिए फ्रांसीसी और पुर्तगाली सरकारों ने भी यही उपाय किए। इससे यूरोप में गंभीर वित्तीय संकट खड़ा हो गया। चूंकि एंटवर्प की अर्थव्यवस्था काफी हद तक वित्तीय व्यापार पर निर्भर करती थी इसलिए उनके लिए इसके गंभीर परिणाम हुए। यद्यपि वाणिज्यिक और व्यापार संबंधी गतिविधियां चलती रहीं, लेकिन एंटवर्प इन घटनाओं से पूरी तरह उबर नहीं सका। एंटवर्प के पतन की एक बड़ी वजह स्पैनिश शासन के खिलाफ नीदरलैंड्स की स्वतंत्रता की लड़ाई थी। यह 1566 में शुरू हुई और छिटपुट रूप में 1648 तक चलती रही। अंततोगत्वा नीदरलैंड्स के विद्रोह के कारण देश दो हिस्सों में विभाजित हो गया। आधा हिस्सा यानी दक्षिणी भाग स्पैनिश शासन के अधीन रहा जिसमें एंटवर्प आता था, जबकि उत्तर के सात प्रांत स्वतंत्र हो गए और उन्होंने यूनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ दि नीदरलैंड्स बनाया। इस लंबी लड़ाई के दौरान स्पेन के पेशेवर सिपाहियों ने वेतन भत्ता न मिलने के कारण एंटवर्प को 1576 में दो बार लूटा। 1583 में इसे फ्रांसीसी सिपाहियों द्वारा लूटा गया। इससे भी बुरा 1585 में हुआ जब स्पेन ने इस नगर पर कब्जा कर लिया और यहां के प्रोटेस्टेंट अनुयायियों को शहर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। इस समय नीदरलैंड्स की अर्थव्यवस्था काफी बड़ी संख्या में प्रोटेस्टेंट अनुयायियों के हाथों में थी, अत: उनके पलायन से इस नगर की वाणिज्यिक गतिविधियां गंभीर रूप से बाधित हो गईं। बार-बार होने वाले युद्धों और राजनीतिक अस्थिरता के परिणामस्वरूप शेल्ट नदी मार्ग बंद करना पड़ा और अंततः एंटवर्प का पतन हो गया। एंटवर्प का नुकसान एम्स्टर्डम का फायदा था।

फ्रांस में शासक किसी बाहरी नगर से धन उधार लेने के बजाए देश के भीतर अपना वाणिज्यिक केंद्र विकसित करने को तरजीह देते थे। इसके लिए उन्होंने मध्य प्रांत में स्थित एक महत्वपूर्ण नगर लियों को संवर्द्धित किया। पंद्रहवीं सदी में फ्रांसीसी शासकों ने खास तौर पर चार्ल्स सप्तम ने लियों को मुख्य वित्तीय और व्यापार केंद्र बनाने का निर्णय किया और इस नगर को विशेष अधिकार और छूट दी। फ्रांसीसी व्यापारियों के जेनेवा मेले में भाग लेने पर पाबंदी लगा दी गई और उन्हें लियों मेले में भाग लेने की सलाह दी गई। हर साल इस प्रकार के चार मेले एक-एक पखवाड़े के लिए आयोजित किए जाते थे। शीघ्र ही इटली और दक्षिण जर्मनी के व्यापारी यहां वाणिज्यिक सौदों और लेन-देन में भाग लेने लगे। लगभग 10 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण मुहैया कराया जाता था जो एंटवर्प में वित्तीय ऋण की तुलना में बेहतर था। फ्रांसीसी शासक यहां से उधार लेते थे। पड़ोस के स्थानों के लोग यहां निवेश करने लगे थे। लेकिन फ्रांस के नए वित्तीय केंद्र के रूप में पेरिस के उत्थान के साथ ही लियों का विशेष महत्व घटने लगा।

इंगलैंड का उदय

सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पुर्तगाल और स्पेन की समुद्री खोजयात्राओं और औपनिवेशिक साम्राज्य के निर्माण के साथ ही आर्थिक गतिविधियां इटली के नगर-राज्यों से हटकर अटलांटिक तट पर केंद्रित हो गईं। पूर्वी यूरोप में ऑटोमन साम्राज्य के विस्तार से व्यापार के भूमिमार्गों का महत्व कम होने लगा और एक नया सामुद्रिक व्यापार मार्ग लोकप्रिय हो गया। अटलांटिक तट के किनारे स्थित देश आर्थिक गतिविधियों के केंद्र बन गए जहां यूरोप के विभिन्न भागों के व्यापारी आकर मिलते थे। इसके परिणामस्वरूप इंगलैंड और हॉलैंड तेजी से महत्वपूर्ण आर्थिक शक्तियां बनकर उभरे।

सोलहवीं सदी की दूसरी चौथाई में पूरे यूरोप में अनेक धार्मिक और राजनीतिक संघर्ष हुए। इससे महाद्वीप के मुख्यभाग से अनेक लोग इंगलैंड में आकर बस गए। इनमें फ्लैंडर्स से आए कपड़ा कारीगर और जर्मनी के धातुकर्मी भी शामिल थे। उन्होंने इंगलैंड में विनिर्माण कार्यों को संवर्द्धित किया जहां सामंती ढांचा पंद्रहवीं सदी के अंत में पहले ही चरमरा गया था। सोलहवीं शताब्दी के दौरान यद्यपि कोई तकनीकी उपलब्धि नहीं मिली, न ही परिवर्तन की गति बहुत तीव्र हुई लेकिन पूरी सोलहवीं सदी में इंगलैंड में लगातार आर्थिक विकास चलता रहा। केवल 1550 के दशक के आरंभ में थोड़े समय के लिए बाजार में मंदी आई। आर्थिक विकास मुख्य रूप से कृषि, विनिर्माण और व्यापार के क्षेत्रों में देखे जा सकते थे। सोलहवीं सदी में शुरू हुई परिवर्तन की प्रक्रिया की परिणति अठारहवीं सदी के अंत में औद्योगिक क्रांति के आगमन के रूप में हुई।

यह ध्यान देना आवश्यक है कि भूमध्यसागर से अटलांटिक तट पर व्यापर क्षेत्र का

स्थानांतरण इंगलैंड के उदय का एकमात्र कारण नहीं था, यद्यपि इसे इससे बहुत फायदा हुआ था। परिवर्तन की गति इंगलैंड की अर्थव्यवस्था और समाज में मौजूद थी। इसके संकेत नई दुनिया में और एशिया में औपनिवेशिक साम्राज्यों के उदय के पहले से ही मिलने लगे थे। इस परिवर्तन की शुरुआत जनसंख्या वृद्धि और मूल्य क्रांति में देखी जा सकती है। पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों की तुलना में, जहां जनसंख्या वृद्धि इतनी अधिक नहीं थी, इंगलैंड और वेल्स की आबादी 1500 से 1700 के बीच दोगुनी हो गई और 1800 तक करीब-करीब चार गुनी हो गई। सोलहवीं सदी के आरंभ में ब्रिटिश द्वीपों की कुल जनसंख्या लगभग 3.5 मिलियन थी जो अठारहवीं सदी के अंत में लगभग 16 मिलियन हो गई। जनसंख्या वृद्धि दर सोलहवीं सदी के अंत में सबसे अधिक थी। यह 1570 और 1600 के बीच 5.6 प्रतिशत, 1600 और 1630 के बीच 5.5 प्रतिशत और 1630 और 1670 के बीच केवल 0.8 प्रतिशत प्रति दशक बढ़ी थी, जबकि सत्रहवीं सदी के मध्य की अवधि को यूरोप के अधिकांश भागों में जनसंख्या ह्रास का समय माना जाता है। सोलहवीं सदी के आरंभ में केवल 7 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी। इन शहरों की कुल संख्या 2000 से थोड़ी अधिक थी। 1640 तक यह अनुपात बढ़कर 10 प्रतिशत हो गया। मुद्रा के अवमूल्यन और स्पेन के रास्ते नई दुनिया से बहुमूल्य धातुओं के आने से मूल्य क्रांति हुई। इसका प्रभाव केवल इंगलैंड पर ही नहीं बल्कि पूरे यूरोप पर पड़ा। इंगलैंड में जनसंख्या वृद्धि उत्पादन विकास से ज्यादा बनी रही। इससे कीमतें और अधिक बढ़ीं। 1520 के दशक में कीमतों में भारी वृद्धि हुई जो 1540 के दशक के मध्य तक जारी रही। इस समय कीमतें 1475 के आसपास जो कीमतें थीं, उससे 75 प्रतिशत अधिक थीं। 1560 के दशक में एक बार फिर जबरदस्त मूल्य वृद्धि हुई और सत्रहवीं सदी के आरंभ में खाद्यान्नों की कीमतें सोलहवीं सदी के आरंभ के समय की कीमतों से 500 प्रतिशत अधिक हो गईं। मूल्य वृद्धि और जनसंख्या वृद्धि की तीव्रता ने परिवर्तन की गति को तेज किया। इससे बड़े पैमाने पर औद्योगिक और व्यावसायिक गतिविधियां शुरू हुईं। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे शहरीकरण हुआ। इससे कृषि जिंसों के उत्पादन पर दबाव बढ़ा और उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बढ़ी।

पूंजीवादी कृषि का उदय

चौदहवीं सदी के ब्लैक डेथ के बाद कृषिदासता में निरंतर कमी आई। विदेशी युद्ध और गृहयुद्ध एवं व्यापार में धीरे-धीरे आने वाली जटिलता ने सामाजिक विलायक का काम किया। कुलीन, बिशप और मठाधीश का समाज में सबसे ऊंचा स्थान था। उनके बाद नाइट्स और जेंटलमैन आते थे। इनका सामाजिक दर्जा उनसे कुछ छोटा था लेकिन इनकी संख्या अधिक थी। ब्लैक डेथ के बाद इनके बीच संतुलन बदल गया था। सोलहवीं सदी के दौरान पारंपरिक भूमि व्यवस्था भी बदल गई। प्रत्यक्ष श्रम और वस्तु द्वारा भुगतान के मूल

रूप में बदलाव लाया गया या मुद्रा के रूप में श्रम का भुगतान किया जाने लगा। भूमि की अवस्था की दृष्टि से निचले वर्ग को अधिक आजादी और सुरक्षा मिली। अंदरूनी लड़ाइयों और आरंभिक ट्यूडर सरकार द्वारा दी गई फांसियों के कारण पारंपरिक कुलीन वर्ग काफी कमजोर हो गया। चर्च की सत्ता और आय में भी कमी आई। बड़े जागीरदारों का पतन ग्रामीण समाज में एक बड़ा परिवर्तन था। इससे छोटे कृषक जमींदार का धीरे-धीरे लेकिन निरंतर विकास हुआ। वे कभी कृषिदास थे और जमींदारों को अपनी सेवा देने को मजबूर थे। उन पर तरह-तरह की पाबंदियां थीं। बहरहाल पंद्रहवीं सदी के अंत तक वे सभी लगभग स्वतंत्र हो गए। वे भुगतान करके या अपने श्रम के एवज में मजदूरी लेकर छोटे-छोटे जोत खरीदने लगे और राजा के दरबार में समान दर्जे की प्रजा की हैसियत पा गए। छोटे कृषक जमींदार यानी *योमैन* शब्द को परिभाषित करना कठिन है लेकिन आम तौर पर ये 'जेंटलमैन' से नीचे के ओहदे के होते थे। यद्यपि कार्ल मार्क्स ने इस शब्द का उपयोग 'किसानों' के आर्थिक संवर्ग के लिए किया है लेकिन यह स्वायत्त लोगों को दरशाता है जिनके पास काश्त की कुछ सुरक्षा होती थी। एक *योमैन* उन्मुक्त भूमिधर हो या न हो, वह लगान देने के अलावा अन्य किसी सेवा के लिए बाध्य नहीं था। अधिकांश *योमैन* के पास बड़े खेते थे। वे उन पर नौकरों या दिहाड़ी मजदूर से काम करवाते थे। सत्रहवीं सदी के मध्य आते-आते वे साधारण ग्रामीण किसान के बजाए आदिम-पूंजीपति किसान के समान बन गए। अपने खेतों में उनके द्वारा शारीरिक श्रम किए जाने की संभावना 'जेंटलमैन' से ज्यादा थी। वे जेंटलमैन से कम शिक्षित थे लेकिन पादरी क्षेत्र के चर्च वार्डेन, गरीब राहत कार्य के पर्यवेक्षकों और जूरी सदस्य के रूप में सोलहवीं सदी के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। सोलहवीं सदी में कृषि संबंधी बदलाव के फलस्वरूप उनकी संख्या और आर्थिक शक्ति में वृद्धि हुई। मूल्य वृद्धि के समय में, ऐसा लगता है, किसान, योमैन और छोटे जमींदारों ने ही पहले-पहल किफायत और निष्ठुर लगान लेने के बुर्जुआ गुण विकसित किए और इसी के अनुरूप बाजार की स्थिति को चलाया और कृषि क्षेत्र में लाभ कमाया।

ग्रामीण आबादी के निचले स्तर पर कृषि क्षेत्र में लगे लोगों में लगभग आधे लोग खेतिहर थे। उनके पास जो जमीन थी वह उनके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं थी। उन्हें अन्य कार्यों पर निर्भर करना पड़ता था। खिदमती काश्तकार और मजदूर इसी श्रेणी में आते हैं। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध के एक जाने-माने सांख्यिकीविद् ग्रेगरी किंग कहते हैं कि पिछले डेढ़ सौ वर्षों से उनकी संख्या बढ़ रही थी और वे कृषि क्षेत्र में लगी आबादी के आधे से अधिक हो गए थे। सोलहवीं सदी के आरंभ में उनका अनुपात एक तिहाई था।

सोलहवीं शताब्दी का समय कृषि के वाणिज्यीकरण का समय था। मूल्य वृद्धि से पारंपरिक जमींदारों के लिए समस्याएं खड़ी हो गई थीं लेकिन नए जमींदारों और छोटे किसानों को इससे नए अवसर मिले थे। इंगलैंड में कृषि के वाणिज्यीकरण के और भी कई कारण थे। जमीन पर बाड़ लगाकर और किसानों को निकालकर और जमीन की पूरी

उत्पादक क्षमता का उपयोग कर जमींदार लाभ कमाना चाहते थे। कई जमींदारों ने पाया कि यूरोपीय बाजार में ऊन की कीमतें बढ़ रही हैं। इससे उन्होंने अपनी जमीन को चारागाह में तबदील करके भेड़पालन शुरू कर दिया। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि उत्पादों की कीमतें बढ़ गई थीं। बॉडेन के अनुसार, 1570 और 1640 के बीच इंगलैंड की अर्थव्यवस्था में कृषि संबंधी व्यापार की मात्रा और संघटन में अचानक उछाल आया। खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग के कारण कंबरलैंड, वेस्टमोरलैंड और दक्षिण-पश्चिमी इंगलैंड में आंतरिक औपनिवेशीकरण को बढ़ावा मिला। मांग के दबाव के कारण सामान्य और बंजर भूमि में, यहां तक कि शाही जंगलों को काटकर खेती की जाने लगी। गांवों से जंगल की बस्तियों जैसे ग्लोसेस्टरशायर और वोर्सेस्टरशायर में अतिरिक्त श्रमिकों का बड़े पैमाने पर आप्रवास हुआ। नए अंत:क्षेत्रों में ऊन उत्पादन क्षेत्रों का विस्तार सामान्य विशेषता हो गई थी क्योंकि 1620 के दशक तक भेड़पालन बढ़ती हुई कीमतों से प्रेरित था। जैसा कि जॉ ई. मार्टिन कहते हैं कि ऊन के वजन के कारण इसका मूल्य अधिक था और इसकी ढुलाई भी सस्ती थी। इस वजह से अनेक पूंजीपति किसानों के लिए भेड़पालन विशेष रूप से आकर्षक बन गया। ये किसान अनाज के स्थानीय बाजार के अलावा अन्य बाजार से लाभ नहीं कमा पा रहे थे।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान भिन्न-भिन्न कृषक वर्गों के उत्थान या पतन के बारे में अलग-अलग विचार हैं। एक ओर आर.एच. टॉनी कहते हैं कि भू-स्वामी वर्ग के मध्य और निम्न सदस्यों ने, जिन्हें *जेंट्री* (अभिजात वर्ग) कहा जाता था, भूमि बाजार में अपनी सक्रिय भागीदारी के जरिए इस अवधि के दौरान महत्वपूर्ण आर्थिक उन्नति की। यह 1530 के दशक में धर्मसुधार आंदोलन के समय में राजा और मठों की जमीनों की बिक्री के कारण हुआ। इसी समय कृषि में नई पूंजीवादी पद्धति की शुरुआत हुई। पारंपरिक अभिजात वर्ग का पतन हो गया क्योंकि मुद्रास्फीति की अवधि में उनकी आय कम हो गई थी। वहीं ट्रेवर रोपर टॉनी से असहमत हैं। वह इन दो समूहों के भूमि प्रबंधन में कोई बड़ा अंतर नहीं पाते हैं। उनके अनुसार कृषि से बड़ा लाभ कमाने की संभावना नहीं थी। बल्कि दरबार के साथ उनके घनिष्ठ संबंध के कारण लाभ कमाए गए। लॉरेंस स्टोन कहते हैं कि सदी के आरंभ में बड़े पैमाने पर जमीन की बिक्री उन गंभीर आर्थिक कठिनाइयों को दरशाती है जो सोलहवीं सदी के मध्य से सामंत वर्ग को पेश आ रही थी। उनके अनुसार सत्रहवीं सदी के दौरान यह समूह आंशिक रूप से उबरा क्योंकि इसने भूमि प्रबंधन की नई पद्धति अपनाई और इसका दरबार और राजशाही के साथ गहरा संबंध था। क्रिस्टोफर हिल का तर्क है कि ये अनिवार्य रूप से विधिक और सामाजिक समूह थे न कि आर्थिक वर्ग और *जेंट्री* और परंपरागत अभिजात वर्ग दोनों के सदस्यों का उत्थान और पतन हुआ। ऐसा नहीं था कि एक वर्ग के उत्थान से दूसरे वर्ग का पतन हुआ। 1500 और 1640 के बीच की अवधि में कृषि उत्पादों के मूल्यों में करीब 600 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसमें बहुत से छोटे भूस्वामियों जैसे कि *जेंट्री* और *योमैन* ने लगान और काश्त के नए रूपों को अपनाया और अपनी आय बढ़ाने के लिए बाजार के कार्यों में भाग लिया। सफल *योमैन* के *जेंट्री* में शामिल होने से इस समूह को ठोस आधार मिला। सोलहवीं सदी में भूमि में निवेश और बाजार के लिए उत्पादन के जरिए धन कमाने का अवसर था। जिन लोगों ने धर्मसुधार आंदोलन के बाद पर्याप्त मात्रा में जमीन खरीदी, वे *जेंटलमैन* बन गए। 1530 के आसपास नए और पुराने *जेंटलमैन* के पास इंगलैंड की जितनी जमीन थी, 1600 तक उससे काफी अधिक अनुपात में थी जिसका नुकसान राजा, चर्च, पारंपरिक अभिजात वर्ग और छोटे किसानों को हुआ। मूल्य वृद्धि के समय उन्होंने अनेक तरीकों से अपनी आय में वृद्धि की। भूमि का अधिकाधिक उपयोग बाजार के लिए उत्पादन करने के लिए किया गया। इससे न केवल कृषि संबंधों में बदलाव आया बल्कि ग्रामीण आय में वृद्धि के जरिए विनिर्माण कार्यों का भी विस्तार हुआ। बहरहाल परिवर्तन की यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत जटिल और अप्रत्यक्ष थी।

पंद्रहवीं सदी के अंत से लेकर 1640 के दशक तक खेती के तरीकों में कोई महत्वपूर्ण नई खोज नहीं हुई लेकिन वाणिज्यिक क्रियाकलापों की मात्रा के कारण बदलाव आया। अधिक लाभ की संभावना से कुछ किसानों ने ग्लोसेस्टरशायर और ईस्ट एंजलिया जैसे स्थानों में (1571 में) तंबाकू और केंट में रंग-सामग्री जैसी नई फसलें लगाईं। कृत्रिम घास, शलजम और गाजर चारा फसलों के रूप में अधिक उगाए जाने लगे। खाद्य फसल के रूप में आलू अमरीका से आया था और वास्तव में लगभग 1585 में इसकी खेती शुरू की गई। आयरलैंड के उपनिवेशीकरण के बाद इसे बड़े पैमाने पर उगाया जाने लगा। यह कहना कठिन है कि कृषि पर नए साहित्य के आगमन और इसकी पठनीयता के बावजूद खेती के कामों में इसका कोई लाभ मिला या नहीं। निस्संदेह सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से इसका महत्वपूर्ण योगदान प्रतीत होता है। शायद कृषि संबंधी पहली पुस्तिका, *बुक ऑफ हस्बैंड्री* 1523 में प्रकाशित हुई। इसके लेखक जॉन फिजरबर्ट थे। इस बारे में बाद का साहित्य खेती के कार्यों में किए गए प्रयोगों के व्यापक प्रेक्षण पर आधारित था लेकिन यह निश्चित ही बहुत कम पाठकों को उपलब्ध हुआ होगा। इंगलैंड की कृषि की बड़ी सफलता का मुख्य कारण पूंजीवादी दिशा में इसका उन्मुख होना है। यह जीवन-निर्वाह कृषि से अलग वाणिज्यिक खेती की दिशा में एक आंदोलन था। टेम्स घाटी, केंट और सफॉक जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बढ़ती हुई शहरी मांग का दबाव अनुभव कर रहे थे। पड़ोस के शहरों में अधिक आबादी होने के कारण कृषि संबंधी विशिष्टीकरण लाने के अवसर मिलते थे। मूल्य वृद्धि से इसे और प्रोत्साहन मिला।

विनिर्माण कार्यों का विस्तार

सोलहवीं सदी इंगलैंड में लोग विनिर्माण क्षेत्र खास तौर पर वस्त्र उद्योग में अधिक रुचि ले

रहे थे। इस औद्योगिक विस्तार का एक रोचक पहलू यह था कि इसके साथ-साथ औद्योगिक पुनर्गठन नहीं के बराबर हो रहा था। ट्यूडर राजा आम तौर पर ऐसी नीतियां अपनाते थे जो इन परिवर्तनों पर प्रतिबंध लगाती थीं। इनका उद्देश्य पूंजीवादी संबंधों के तीव्र विकास को रोकना था। फिर भी औद्योगिक विकास पूंजीवादी दिशा में जारी रहा। 1551-52 में हलकों नाव (गिग) की मिलों के खिलाफ एक कानून बनाया गया। 1555 के बुनकर कानून के तहत ग्रामीण कपड़ा व्यापारियों पर एक से अधिक करघा रखने पर पाबंदी लगा दी गई, वहीं बुनकर दो से अधिक करघा नहीं रख सकते थे। इसका उद्देश्य कपड़ा विनिर्माण कार्य को शहरों तक सीमित रखना था। 1563 का द *स्टेच्यूट ऑफ आर्टिफिसर्स* के तहत विनिर्माण क्षेत्र पर गिल्ड का नियंत्रण हो गया। पहले कुशल पेशे में आने के लिए सात वर्षों का प्रशिक्षण आवश्यक था। यह इस पेशे से लोगों को दूर रखकर शहरी संघटन की उस पुरानी परंपरा को जारी रखने का भी प्रयास था। स्टुअर्ट सरकार ने भी उन प्रतिबंधों को जारी रखा। 1624 में सरकार ने सूई बनाने वाली मशीनों को नष्ट करवा दिया। 1633 में पीतल के बकल्स बनाने पर रोक लगा दी गई और 1635 में लकड़ी काटने के लिए पवनचक्की के इस्तेमाल के विरुद्ध आदेश जारी किए गए। इन नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन से इंगलैंड के औद्योगिक विकास को भारी क्षति होती लेकिन जस्टिसेस ऑफ पीस ने इन उपायों को पूरी तरह लागू नहीं किया। जस्टिसेस ऑफ पीस *जेंटलमैन* और व्यापारियों की सामाजिक पृष्ठभूमि से थे। इंगलैंड में पेशेवर नौकरशाही नहीं होने के कारण शासकों को जस्टिसेस ऑफ पीस पर निर्भर करना पड़ता था। संसद ने भी सरकार के कई नियमों का विरोध किया, जैसे कि 1624 में उद्योग को ग्रामीण क्षेत्रों में लगाने का मामला था।

उत्पादन और रोजगार के सृजन की दृष्टि से कपड़ा उद्योग सबसे महत्वपूर्ण था। यद्यपि कोई बड़ी नई प्रौद्योगिकीय खोज नहीं हुई थी लेकिन सोलहवीं सदी में कपड़ा विनिर्माण का निरंतर विकास हुआ। सबसे महत्वपूर्ण घटना ऊनी कपड़ा विनिर्माताओं का प्रसार थी। सोलहवीं सदी के आरंभ तक यह फ्लेमिश उद्योग का प्रमुख कार्य था। लेकिन सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण-पूर्वी इंगलैंड में इसका प्रसार होने लगा। इसका मुख्य कारण था बाहर से फ्लेमिश और वैलून शरणार्थियों का आना। रॉफ डेविस के अनुसार यह परिवर्तन अनिवार्य हो गया था क्योंकि नई किस्मों के आने से ऊन की गुणवत्ता बेहतर हो गई थी। पुराने भारी कपड़ों की सस्ती किस्मों का बाजार इन ऊनी कपड़ों को मिल गया। लेकिन केवल ऊनी कपड़ों में ही विकास दर्ज नहीं हुआ। लंकाशायर के मोटे कपड़ों के उत्पादन में भी आइरिश सूत की आपूर्ति के कारण वृद्धि हुई। लेकिन यह उत्पादन आयात पर बहुत अधिक निर्भर रहा। *फस्चियन* (मोटा सूती कपड़ा) मुख्य रूप से हॉलैंड और जर्मनी उत्पादित एक किस्म था। लेकिन धीरे-धीरे ओल्डैम, बरी और ब्लैक बर्न के आसपास के क्षेत्रों में इंगलैंड में भी इसका उत्पादन शुरू किया गया। होजरी क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन दिखा जिसमें जुराब की बुनाई भी शामिल थी। विनिर्माण क्षेत्र समुन्नत हुआ क्योंकि बुनाई बहुत से गरीब परिवारों के

लिए पूरक आय का स्रोत बन गई थी। नॉटिंगमशायर में इस उद्योग की लोकप्रियता ने विलियम लीज को 1589 में बुनाई फ्रेम का आविष्कार करने को प्रोत्साहित किया। औद्योगिक क्षेत्र में इसके लाए जाने का विरोध किया गया क्योंकि ग्रामीण आबादी में इससे बेरोजगारी बढ़ने का डर था। सोलहवीं सदी के आरंभ में कपड़ा क्षेत्र में एक और आविष्कार गिग-मिल था जो शायद महाद्वीप से आई थी। यह जलचालित युक्ति थी जिसका उपयोग शीयरर नक्शा बनाने के लिए करते थे। कई शीयरर (जो ऊनी कपड़े का रोयां कतरते थे) इसका उपयोग नहीं कर सकते थे क्योंकि इसमें भारी निवेश की आवश्यकता थी। शीयरर्स द्वारा इसका जोरदार विरोध किए जाने पर 1551 में और बाद में पुनः 1633 में इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

वॉलरस्टीन के अनुसार, सोलहवीं सदी तक इंगलैंड के कपड़ा उद्योग ने दो बहुत महत्वपूर्ण विशेषताएं विकसित कर ली थीं। पहली, यह ग्रामीण उद्योग बन गया था; और दूसरी, इसने इंगलैंड को व्यापक निर्यात बाजार की खोज में लगा दिया। मैरियन मेलोविस्ट कहते हैं कि चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियों की मंदी के कारण कृषि से होने वाली आय में भारी कमी आई थी। इसके परिणामस्वरूप खेती पर निर्भर करने वाले परिवारों की आय के पूरक के रूप में ग्रामीण वस्त्र उद्योग का विकास हुआ। ग्रामीण उद्योगों के विकास से बहुत फायदा हुआ। इससे शहरी व्यापार संघों द्वारा लगाई गई अधिक मजदूरी से बचने में मदद मिली। साथ ही फ्युलिंग मिलों को चलाने के लिए सस्ती जलशक्ति के उपयोग का लाभ मिला। ग्रामीण उद्योग सस्ते किस्म के कपड़े बनाते थे। यह पतनोन्मुख कुलीन वर्ग और सामान्य जन की पहुंच में थे। ग्रामीण उद्योग के उत्थान से शहरी उत्पादन की कमी की भरपाई हो गई। विलियम स्टंप और जैक ऑफ न्यूबरी ने बुनकरों को अपने कुटीरों से बाहर निकालने का प्रयास किया ताकि वे आधुनिक फैक्टरी के समान एक स्थान पर काम कर सकें, हालांकि ये प्रयास असफल हो गए और विनिर्माण कार्य घरेलू आधार पर चलता रहा। पंद्रहवीं सदी के मध्य से कपड़ों के रूप में स्थानीय रूप से विनिर्मित उत्पादों ने कच्चे ऊन के निर्यात का स्थान ले लिया। इस प्रकार कपड़ा इंगलिश निर्यात का मुख्य उत्पाद बन गया।

सोलहवीं सदी में कुछ अन्य विनिर्माण कार्यों का भी विकास हुआ। जहां पुराने उद्योगों का विस्तार हुआ, वहीं शीशा, तांबा, पीतल और लक्जरी कपड़ों से संबंधित नए विनिर्माताओं का भी विकास हुआ। ट्यूडर सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई राजनीतिक स्थिरता और नियमित युद्धों में कमी होने से भी उद्योगों के विस्तार में मदद मिली।

औद्योगीकरण वस्त्र क्षेत्र तक सीमित नहीं था। अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन और विकास द्रष्टव्य थे। कोयला खनन क्षेत्र में सबसे ज्यादा औद्योगिक प्रगति दिखी। 1540 से 1640 के बीच कोयला उत्पादन 2,00,000 टन से बढ़कर लगभग 2 मिलियन टन हो गया। कोयला खनन साधारण आर्थिक कार्य से बढ़कर लगभग एक पूरा उद्योग बन गया। इसके विकास का मुख्य कारण था जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण लकड़ी की कमी।

इंगलैंड के अनेक भागों में कोयले के भंडार थे। चूंकि कोयला एक भारी वस्तु है इसलिए परिवहन के आधुनिक तरीकों की अनुपस्थिति में इसकी दुलाई बहुत महंगी रही होगी। इंगलैंड में इस समस्या का काफी हद तक टेम्स, सेवर्न और ट्रेंट जैसी नदियों की उपस्थिति के कारण हल हो गया। कोयला उत्पादक क्षेत्रों को कोयले के बड़े भंडारों और नौपरिवहनीय नदियों से निकटता का लाभ था। कोयले के भंडारों का पता चलने से इंगलैंड के लोगों को काफी राहत मिल गई क्योंकि लकड़ी के स्टॉक की उपलब्धता घट रही थी। इसने अठारहवीं सदी में बड़े पैमाने पर औद्योगिक परिवर्तन का आधार तैयार किया। चूंकि खनन एक पूंजी उन्मुख कार्य था, इसलिए इसमें भारी निवेश अपेक्षित था। इससे इसने पूंजीवाद के विकास के लिए अनुकूल स्थिति तैयार की।

कोयले के खदानों के समान ही लौह उद्योग स्पष्ट रूप से पूंजीवादी दिशा में विकसित हुआ। वात भट्टी के बारे में लोगों को यूरोप के अन्य हिस्सों, खास तौर पर जर्मनी में पहले से ही पता था। इंगलैंड में इसकी शुरुआत संभवतया 1496 में हुई। यद्यपि उत्पादन का सही-सही ब्यौरा उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि 1640 तक इंगलैंड में लोहे के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई थी। बढ़ते युद्ध के साथ ही लोहे की मांग बढ़ गई क्योंकि यह हथियारों और तोपों के लिए आवश्यक था। बर्मिंघम क्षेत्र में धातु कर्म संबंधी व्यापार बढ़े। 1568 में 'सोसाइटी ऑफ मिनरल एंड बैटरी वर्क्स' नामक एक संयुक्त स्टॉक कंपनी बनी। फिर भी लौह उत्पादन में वास्तविक प्रगति अठारहवीं सदी के आरंभ में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत से हुई। महारानी एलिजाबेथ के समय बनी माइंस रॉयल का उद्देश्य इंगलैंड को विदेशी तांबे पर निर्भरता से मुक्त करना था।

व्यापार का विस्तार

पंद्रहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में निर्यात व्यापार के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस अवधि में इंगलैंड द्वारा किए जाने वाले निर्यात में ऊन और खाद्यान्नों की अहम भूमिका थी लेकिन सोलहवीं सदी के मध्य से कृषि उत्पादों का स्थान वस्त्रों ने लेना शुरू कर दिया। यह परिवर्तन 1550 के दशक में आई भारी व्यापार मंदी के कारण हुआ। इस परिवर्तन का एक पहलू इंगलिश व्यापारी समूहों द्वारा विदेशी व्यापारियों खासकर इतालवी और बाद में हैंसिएटिक लीग के व्यापारियों से धन ऐंठा जाना था। एम.एम. पोस्टन इसे 'अकाल प्रौढ़ वाणिज्यवाद' कहते हैं। इंगलैंड के कपड़ा उद्योग को पंद्रहवीं सदी में अनेक बार हानि हुई। पोस्टन और बिंडॉफ जैसे विद्वान इन हानियों को 1486 में विदेशी व्यापारियों के एक नए वाणिज्यिक संगठन फेलोशिप ऑफ मर्चेंट एडवेंचरर्स ऑफ लंदन के निर्माण की वजह बताते हैं। एंटवर्प के साथ निर्यात व्यापार पर एकाधिकार कर लिया गया। ऊन व्यापार और कपड़ा व्यापार में प्रमुख अंतर बाजार का स्वरूप था। इतालवी राज्यों को इंगलैंड के लोग महाद्वीप में ऊन व्यापार करने लगे थे। यह पत्तन उनके नियंत्रण में था। लेकिन प्रशा, पोलैंड या बाल्टिक राज्यों जैसे अंदरूनी क्षेत्रों में कपड़ा व्यापार पर विदेशी व्यापारियों का ही एकाधिकार था। बाजार असुरक्षित थे। अकसर किसी न किसी तरह की गड़बड़ी होती रहती थी। सोलहवीं सदी तक इंगलैंड के निर्यात व्यापार में तेजी आई। लगभग दो-तिहाई इंगलैंड का निर्यात एंटवर्प के साथ और शेष फ्रांस और आइबेरियन प्रायद्वीप के साथ होने लगा। शक्तिशाली राजतंत्र के उदय का भी इंगलैंड के विदेश व्यापार पर अनुकूल प्रभाव पड़ा।

व्यापार के विकास का एक महत्वपूर्ण कारण चार्टर्ड कंपनियों का उदय होना भी था। अनेक कंपनियां बनाई गईं। राज्य द्वारा उन्हें एकाधिकार प्रदान किए गए। इनमें मस्कवी कंपनी, लिवेंत कंपनी, हडसन बे कंपनी और ईस्ट इंडिया कंपनी शामिल थीं। ये या तो विनियमित या संयुक्त साझेदारी कंपनियां थीं। इन कंपनियों ने न केवल व्यापार के विस्तार में बल्कि अंगरेजी औपनिवेशिक साम्राज्यों के निर्माण में अहम भूमिका अदा की।

व्यापार के क्षेत्र में सोलहवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी—फेरी वालों और बिचौलियों के एक नए समूह का उदय होना। ये न केवल शहर के बाजारों से उपभोक्ता वस्तुएं दूर-दराज के क्षेत्रों में ले जाते थे बल्कि कारीगरों को कच्चे माल भी देते थे। राज्य और पारंपरिक अधिकारी इन बिचौलियों का विरोध करते थे। 1614 में कोकामी प्रोजेक्ट के जरिए ऊन व्यापार में बिचौलियों की भागीदारी को रोकने के लिए प्रयास किया गया था। सरकार ने भी ऊन व्यापारियों की गतिविधियों को रोकने का प्रयास किया जो लंदन के निवासियों को खाद्य पदार्थ की आपूर्ति करते थे। इन व्यापारियों को सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान इंगलैंड की अर्थव्यवस्था में बदलाव लाने वाले तत्वों के रूप में देखा जाता है। इंगलैंड में परिवर्तन की प्रक्रिया इंगलिश कृषि और विनिर्माण के बीच गहरे संबंध को दरशाती है। यह संबंध इंगलैंड के भीतर और बाहर व्यापार के विकास में भी दिखा।

डच का उदय

कई विद्वानों को हॉलैंड का उदय भव्य और अचानक हुआ प्रतीत होता है। यदि नीदरलैंड्स के मध्यकाल के अंतिम समय के इतिहास को देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि घेंट, ब्रुगेस और पाइरेस जैसे फ्लेमिश शहर वस्त्र उत्पादन के महत्वपूर्ण केंद्र थे। इनके यूरोप के कई भागों के साथ व्यापक व्यापार संबंध थे। डची ऑफ ब्राबांत और काउंटी ऑफ फ्लैंडर्स उद्योग और व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र रहे थे। इन शहरों में क्रमिक ह्रास दिखा लेकिन पश्चिमी फ्लैंडर्स के आसपास के छोटे शहरों में ग्रामीण वस्त्र उद्योग का विकास दिखा। फ्लेमिश शहरों के पतन के परिणामस्वरूप एंटवर्प का उत्थान हुआ और सोलहवीं सदी के मध्य तक यह यूरोप का मुख्य बाजार बन गया जिसके पास प्रचार संसाधन थे। हालांकि, यह कभी भी एक बड़ा औद्योगिक केंद्र नहीं बन सका।

यूरोप के शेष तटवर्ती राज्यों पर नीदरलैंड्स की प्रधानता सत्रहवीं सदी की एक परिघटना थी। लेकिन सोलहवीं सदी के अंतिम दशकों में हॉलैंड का एक आर्थिक शक्ति के रूप में उदय स्पष्ट हो गया था। जब एंटवर्प और लियों का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा था, एम्स्टर्डम तेजी से यूरोप का वित्तीय केंद्र बनता जा रहा था। एम्स्टर्डम के उदय का हालैंड के उत्थान से गहरा संबंध था। सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्पैनिश शासन के खिलाफ स्वतंत्रता संघर्ष 1566 में आरंभ हो गया था। यह स्पैनिश अधिकारियों द्वारा डच व्यापारियों के शोषण के खिलाफ प्रतिक्रिया थी। साथ ही यह कैथोलिक शासकों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट बहुसंख्यकों की धार्मिक प्रतिक्रिया भी थी। यद्यपि स्पेन और नीदरलैंड्स के बीच संघर्ष करीब सत्रहवीं सदी के मध्य तक जारी रहा, नीदरलैंड्स के उत्तरी राज्यों ने सोलहवीं सदी में ही विलियम दि साइलेंट के नेतृत्व में खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। नतीजतन डच गणराज्य का निर्माण हुआ जिसमें हालैंड, जीलैंड, उट्रेक्ट, गेल्डरलैंड, ग्रोनिंजेन, ओबरीज्सेल और फ्राइसलैंड शामिल थे। स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान डच एक राष्ट्र बन गया था लेकिन यह एकीकृत राष्ट्र होने के बजाए एक परिसंघ बना रहा जिसके पास कोई शक्तिशाली केंद्रीयकृत राजतंत्र नहीं था। यह राज्य का अति विकेंद्रित रूप था जिसमें अलग-अलग प्रांतों की अपनी स्वायत्तता थी। नीदरलैंड्स के संयुक्त प्रांतों की सरकार एक अनौपचारिक व्यवस्था द्वारा चालित थी। यह व्यवस्था एम्स्टर्डम नगर के प्रमुख व्यापारी परिवारों और कुलीन वर्ग के सदस्यों, खास तौर पर ऑरेंज घराने के सदस्यों के नेतृत्व का सामूहिक रूप थी। वास्तविक शक्ति राज्य परिषद जिसे *डाड वैन स्टैट* और स्टेट्स-जेनरल (यह हेग में मिलने वाले विभिन्न प्रांतों के राजदूतों का प्रतिनिधित्व करता था) के हाथों में थी। यूरोपीय राज्यों की समयुगीन सरकारों की तुलना में इस प्रकार का केंद्रीकरण प्रशासन का एक विचित्र पहलू था। अधिकांश यूरोपीय राज्यों में एक शक्तिशाली और केंद्रित निरंकुश राजतंत्र था। इस व्यवस्था में हालैंड का वर्चस्व था क्योंकि उसके पास जबरदस्त आर्थिक और सामाजिक शक्ति थी। इस संबंध में पी.डब्ल्यू. क्लेन ने कहा है कि संयुक्त प्रांतों में एक राज्य से मिलती-जुलती शायद ही कोई बात थी। दरअसल डच संपन्नता का राज्य से शायद ही कोई लेना-देना था। इस व्यवस्था का सकारात्मक पहलू यह था कि व्यापारी अल्पतंत्र व्यापार और वाणिज्य के संवर्द्धन के लिए राज्य की नीतियां निर्धारित करता था।

विद्वानों ने हालैंड के उत्थान की व्याख्या अलग-अलग तरह से की है। उनमें में यह बहस का विषय रहा है। इमैनुएल वालरस्टीन ने अपनी पुस्तक *दि मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम* में कहा है कि हालैंड का उदय आधिपत्यवादी प्रकृति का था। विश्व अर्थव्यवस्था में इसका केंद्रीय स्थान बन गया था। अनुकूल भौगोलिक अवस्थिति के कारण डच ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और पड़ोसी राज्यों को अपने अधीनस्थ बनाकर यह सभी मोर्चों पर विजयी रहा। इसे एक मुक्त बाजार के सभी लाभ मिल रहे थे और इसे वाणिज्यवादी नीति अपनाने की आवश्यकता नहीं थी। एक शक्तिशाली और केंद्रित राज्य सत्ता की आवश्यकता नहीं थी जैसा

कि फ्रांस और स्पेन में थी। केंद्रीय सत्ता महंगी और दमनकारी साबित होती। एम्स्टर्डम नगर के माध्यम से हालैंड को प्राप्त आर्थिक और राजनीतिक श्रेष्ठता ही पूरे देश को एकजुट रखने और शासन का एक लोचदार और विकेंद्रित ढांचा मुहैया कराने के लिए पर्याप्त थी। इस व्याख्या को सभी इतिहासकार नहीं मानते। बी.एच. स्लीचर वैन बाथ और जे.सी. बोयर वालरस्टीन की इस थ्योरी से सामान्य रूप में सहमत तो हैं लेकिन वे यह भी कहते हैं कि पहले संयुक्त प्रांतों ने उन प्रमुख समस्याओं को काफी हद तक हल कर लिया था जिनके कारण पूर्व औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के विकास में बाधा उत्पन्न हो रही थी। ब्रोदेल इसे अपूर्ण आधिपत्य मानते हैं। शॉफर कहते हैं कि आरंभिक प्रतिकूल परिस्थिति से फायदेमंद स्थिति में यह परिवर्तन कृषि में संचय के द्वारा हुआ। यह नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के उदय के कारण संभव हुआ जो स्पैनिश चांदी के आगमन और बाल्टिक अनाज व्यापार पर डच एकाधिकार द्वारा निर्मित थी। शॉफर के अनुसार वास्तविक प्रश्न यह जानने का है कि यह 'केंद्र' अस्तित्व में कैसे आया जिसके फलस्वरूप यह वर्चस्व स्थापित हुआ। मोरिनो को संदेह है कि केंद्र में अवस्थित किसी देश को स्वत: अधिशेष को हासिल करने का लाभ मिल सकता है। नील्स स्टींसगार्द के अनुसार जमा बैंकों, विनिमय संस्थाओं और डच ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में तीन महान डच संस्थाओं के परिणामस्वरूप सत्रहवीं सदी के दौरान डच पूंजीवाद का विकास हुआ। मॉरिस ऐमार्द के अनुसार सोलहवीं सदी से यूरोप के आर्थिक एकीकरण और बढ़ी हुई अंतर्निर्भरता का लाभ सबसे पहले संयुक्त प्रांतों को मिला। यह अंतर्निर्भरता और आर्थिक एकीकरण काफी हद तक डच बेड़ों, उनके व्यापारियों की गतिविधियों और उनकी पूंजी के कारण आया था। डच द्वारा बनाए गए व्यापार नेटवर्कों के कारण एम्स्टर्डम में पूंजी की बरसात हो रही थी। ऐमार्द कहते हैं कि यद्यपि इस काल को अभी भी वाणिज्यिक पूंजीवाद कहा जाता था, फिर भी यही वह समय था जब यूरोपीय अर्थव्यवस्था ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के जरिए उत्पादकता में लाभ और बाजारों के खुल जाने और विस्तार से धीरे-धीरे नया आकार ग्रहण किया। डच आधिपत्य का यह नया पहलू था जिसमें एम्स्टर्डम का स्टॉक बाजार वित्तीय गतिविधियों का जीवंत केंद्र बन गया।

हालैंड का उत्थान सोलहवीं सदी के अंतिम 25 वर्षों में आरंभ हुआ जब एंटवर्प और वेनिस ह्रासोन्मुख थे। उट्रेक्ट की संधि के तहत उत्तर और दक्षिण दो हिस्सों में बंटवारे के समय जनवरी 1579 में डच गणराज्य की स्थापना हुई। संधि पर हस्ताक्षर करने वाले नगर और प्रांत स्पैनियाड्‌र्स का प्रतिरोध करने के लिए एक नए राजनीतिक और सैनिक संघ बनाने के लिए सहमत हो गए। इस नए संघ का नाम यूनाइटेड प्रोविंसेज ऑफ नीदरलैंड्स दिया गया। संधि में यह व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदस्य अपने आंतरिक मामलों में संप्रभु होंगे लेकिन युद्ध, शांति और कराधान के मामले में वे मिलकर निर्णय लेंगे।

कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच लड़ाइयों और तनावों के कारण शरणार्थियों की बाढ़ सी आ गई। फ्रांस, एंटवर्प और दक्षिणी नीदरलैंड्स से न केवल प्रोटेस्टेंट बल्कि आईबेरियन

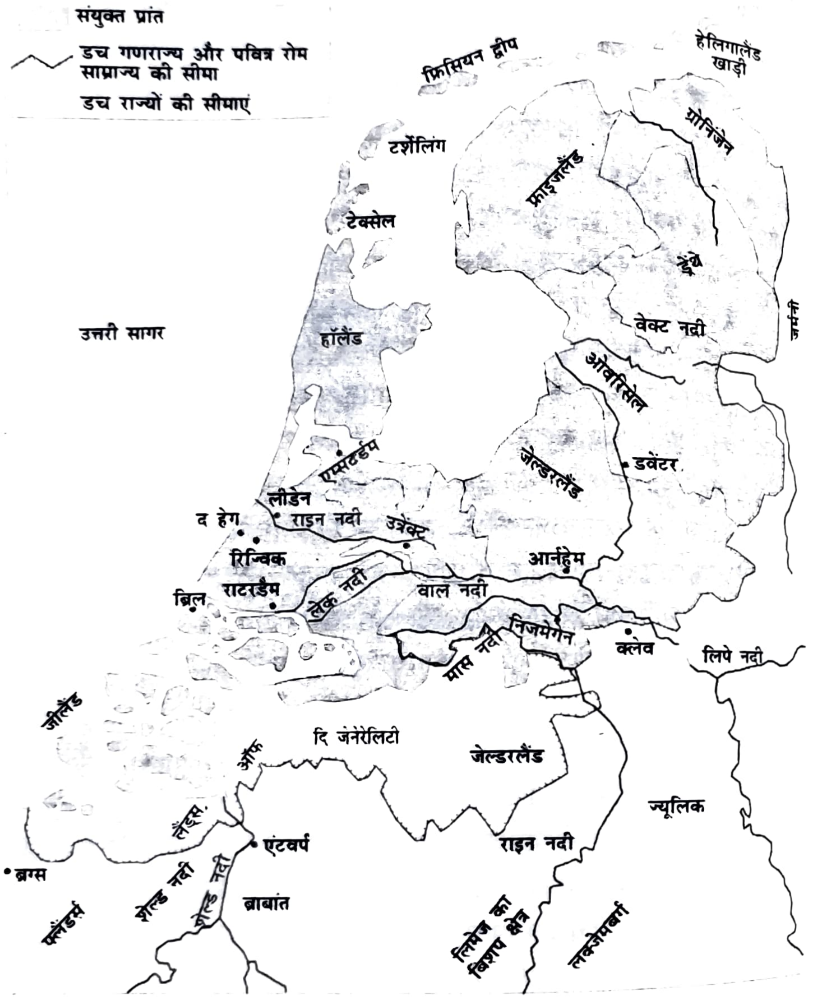

मानचित्र 6.1 : नीदरलैंड्स के संयुक्त प्रांत

क्षेत्र से यहूदी भी आ रहे थे। इनमें संपन्न व्यापारी और कुशल शिल्पकार भी थे जिन्होंने हालैंड की आर्थिक उन्नति में बहुत बड़ा योगदान दिया। उनके कारण ही नई दुनिया सहित अन्य क्षेत्रों के साथ हालैंड के वाणिज्यिक संपर्क स्थापित हुए। यहूदियों के योगदान के बारे में कई लेखकों ने लिखा है। एम्स्टर्डम की अर्थव्यवस्था क्षेत्रीय थी जो विविध क्षेत्रों का व्यवस्थित रूप से दोहन करती थी। सत्रहवीं सदी के दौरान यह आर्थिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में विकास के बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच गई।

नौपरिवहन में डच की रुचि भूमि और जल के मिश्रण के कारण थी, जिससे यूनाइटेड प्रोविंसेज बने थे। डच लोग समुद्रगमन करते थे। उनमें से कई ने मछली पकड़ने, तटानुगमन और नौयात्रा के जरिए उत्तरी सागर में अपना व्यापार सीखा था। एक लंबे समय तक डच और जीलैंड के मछुआरों ने उत्तरी सागर में जलयात्रा की थी। मछली पकड़ना उनका राष्ट्रीय उद्योग बन गया था। इससे अनेक किस्मों की मछलियों के जरिए न केवल स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध होते थे बल्कि धन का सृजन भी होता था जिससे आधुनिक उद्यम शुरू हुए। 1595 से डच ने व्हेल पकड़ना शुरू कर दिया था। 1614 में मछली पकड़ने का एकाधिकार एक उत्तरी कंपनी को दिया गया। उसके दायरे में नोवा, जेम्बल्या से लेकर डेविस स्ट्रेट्स के तट आते थे। व्हेल पकड़ना न केवल मछुआरों बल्कि अन्य विनिर्माताओं के लिए भी बहुत लाभदायक था क्योंकि इसका इस्तेमाल लैंप जलाने, साबुन बनाने और कपड़ों को साफ करने के लिए किया जाता था। सैकड़ों मछली पकड़ने वाले नावों का इस्तेमाल बड़े जहाजों के सहायक के रूप में किया जाता था। इससे डच हेरिंग का भी संवर्द्धन हुआ। ब्रोदेल के अनुसार सत्रहवीं सदी के दौरान 12,000 मछुआरों ने 3,00,000 टन मछली पकड़ी। हेरिंग व्यापार से नमक व्यापार को बढ़ावा मिला। मत्स्य-ग्रहण उद्योग के परिणामस्वरूप डच नौसैनिक बेड़े का विस्तार हुआ। 1570 के दशक तक डच ने नए पोत बना लिए जिन्हें *विलेबूट* या *फ्लूइट* या *फ्लाइबोट* कहा जाता था। अन्य देशों के जहाजों की तुलना में ये पोत अधिक बड़े, गोलाकार और अधिक क्षमता वाले थे। ये अधिक सामान ढो सकते थे और इनमें अपेक्षाकृत कम चालकों की आवश्यकता थी। हालैंड की सफलता का डच पोत-निर्माण से गहरा संबंध था। जे.एल. प्राइस के अनुसार 1636 तक डच व्यापारी बेड़े में लगभग 2,300-2,500 पोत थे। इसके अलावा 2,000 हेरिंग बस (विशिष्टीकृत फिशिंग बोट्स) थे। फ्लूइट उस समय का सबसे सफल पोत था। इसे अनाज और लकड़ी जैसे भारी सामान ढोने के लिए बनाया गया था। ब्रोदेल के अनुसार डच पोत बनाए जाते थे क्योंकि उन्हें लकड़ी, उचनिचान (पिच), टार, साज-सामान और अन्य सामान सीधे बाल्टिक से प्राप्त हो जाते थे। जैसा कि डच विशिष्ट शिल्पकार थे इसलिए वे उस समय की आधुनिकतम तकनॉलॉजी का इस्तेमाल करते थे जैसे यांत्रिक आरा, मस्तूल के लिए हविस और बदलने लायक पुर्जे। सारडम एम्स्टर्डम के निकट एक मशहूर पोत निर्माण कारखाना था। एम्स्टर्डम का बंदरगाह इतना बड़ा था कि उसमें 4,000 पोत आ जा सकते थे। यहां 500 पोत हमेशा

रहते थे। माल ढुलाई का व्यवसाय यहां के नागरिकों की आय का महत्वपूर्ण स्रोत था। डच जहाजों का भी व्यापार करते थे। एम्स्टर्डम पुराने जहाजों का एक बड़ा बाजार बन गया। नौपरिवहन उद्योग से न केवल अनेक मछुआरों को रोजगार मिलता था बल्कि पोत कारखानों में कामगारों और लगभग 48,000 लोगों को रोजगार मिला हुआ था। इससे तटीय प्रदेश भी भीतरी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ जुड़ गए। मिट्टी में ऊर्वरता की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्र में विशिष्टीकरण आरंभ हुआ।

यूनाइटेड प्रोविंसेस के कई भागों में बाल्टिक के विशाल अन्न व्यापार के कारण खाद्यान्नों की खेती की कीमत पर पशुपालन को बल मिला। डच ने बाहर से खाद्यान्नों का आयात आरंभ किया, खास तौर पर बाल्टिक क्षेत्र से, क्योंकि इस व्यापार पर कुल मिलाकर उनका वर्चस्व था। इंगलैंड के समान ही नीदरलैंड्स में भी सामंती व्यवस्था का शेष यूरोप से पहले पतन शुरू हो गया था। केंद्रित राज्यों की अनुपस्थिति में एक ठोस ग्राम्य लोकतंत्र विकसित होने लगा। व्यापार के विकास से कृषि के वाणिज्यीकरण को बल मिला। व्यापार के विशाल नेटवर्क के कारण इस क्षेत्र में पूंजी निवेश की गई। इन सबसे कृषि अर्थव्यवस्था काफी मजबूत हो गई और ग्रामीण लोग मौद्रिक विनिमय व्यवस्था में आ गए। उत्तरी नीदरलैंड्स का कृषि उत्पादन लाभ की संभावना के कारण काफी फला-फूला। पंद्रहवीं सदी में ही शहरी आबादी की मांग के दबाव के परिणामस्वरूप व्यापक परिवर्तन हुए जैसे कृषि योग्य भूमि का डेयरी उद्योग में परिवर्तन और चारा फसल लगाया जाना और फसलों में फेर-बदल करना। इससे उत्तरी क्षेत्र डेयरी उद्योग का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। यह यूरोप के अनेक भोगों को दूध के उत्पादों की आपूर्ति करता था। यह कृषि पूंजीवाद का भी केंद्र बन गया। इस प्रकार के कार्यों के लिए बड़े पूंजी निवेश और गहन श्रम की आवश्यकता थी। पूंजी शहरों में उपलब्ध थी। बैंकिंग व्यवस्था की अनपुस्थिति में सीमित रूप से धन की व्यवस्था इन शहरों से की गई। पूरी सोलहवीं सदी के दौरान मूल्यों में वृद्धि भी वाणिज्यीकरण के अनुकूल साबित हुई।

हालांकि यह स्थिति केवल हालैंड और जीलैंड तक ही सीमित थी। इसके विपरीत उट्रेक्ट सहित पूर्वी प्रांतों में सोलहवीं सदी में शायद ही कोई बदलाव आया। यहां अधिकांश क्षेत्र निर्वाह खेती तक सीमित थे। सत्रहवीं सदी के मध्य तक स्पेन के खिलाफ युद्ध के कारण इसे भारी क्षति उठानी पड़ी। फिर भी सोलहवीं सदी के अंतिम वर्षों में कुछ प्रगति हुई। भूमि सुधार परियोजनाओं और भूमि की ड्रेनिंग सिंचाई पर ध्यान दिया गया। ये परिवर्तन उत्तरी आयरलैंड में किए गए बड़े पैमाने पर भूमि सुधार की परियोजनाओं की तुलना में काफी कम थे। इन सुधार परियोजनाओं के लिए पूंजी एम्स्टर्डम और इन क्षेत्रों के व्यापारियों द्वारा मुहैया कराई गई। सत्रहवीं सदी के आरंभ के वर्षों में हालैंड और पूर्वी प्रांतों के बीच का अंतर बिलकुल स्पष्ट हो गया। बड़े पैमाने पर भूमि सुधार और एम्स्टर्डम में पूंजी की उपलब्धता और बढ़ती हुई आबादी की मांग के कारण डेयरी उद्योग का काफी विस्तार

हुआ। डच मक्खन, दूध और पनीर के निर्यातक बन गए। इन्हीं कारणों से लीडेन और एम्स्टर्डम के बीच के क्षेत्र में बाजार खेती को बढ़ावा मिला। इन परिवर्तनों से निर्वाह कृषि बाजार कृषि में बदल गई और कृषि डच लोगों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गई।

व्यापार और उद्योग

हालैंड का भाग्य इसके व्यापार और उद्योग से गहरे रूप से जुड़ा हुआ था। यूरोपीय व्यापार पर डच वर्चस्व के कारण ही हालैंड का उदय हुआ था। अन्य प्रांत इस लाभ से वंचित रह गए थे। हालैंड और यूनियन के अन्य सदस्यों के बीच इस अंतर से न केवल उनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई बल्कि विदेश संबंधों में उनकी रुचि भी अलग-अलग हो गई। डच अर्थव्यवस्था अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर बहुत अधिक निर्भर थी और यह अंतरराष्ट्रीय समुद्रों में व्यापार की स्वतंत्रता का समर्थन करती थी। केवल जीलैंड और फ्राइजलैंड के पास कुछ हद तक इस व्यापार का लाभ लेने की क्षमता थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि सत्रहवीं सदी की तीसरी चौथाई में एम्स्टर्डम का व्यापार रॉटर्डम के व्यापार से पांच गुना अधिक था। 1645 में डेनमार्क और स्वीडेन के बीच युद्ध में डच भागीदारी से इस गणराज्य को फायदा हुआ, हालांकि डच इस युद्ध में सीधे तौर पर शामिल नहीं था। डच को फ्रांस और दक्षिण यूरोप के साथ व्यापार से भी लाभ हुआ। यहां से इसका अनाज और अलसी का व्यापार था। डच व्यापारी फ्रांस के अटलांटिक बंदरगाहों पर शराब और नमक के व्यापार को नियंत्रित करते थे। सत्रहवीं सदी के आरंभ में डच ब्रिटिश कोयले के निर्यात में शामिल थे (1616 में न्यू कैसल से निकलने वाले 686 कोयले के कार्गो में से 537 डच और फ्रांसीसी द्वारा भेजे गए थे)। वी.ओ.सी. (डच कंपनी जो 1602 में स्थापित हुई) द्वारा किए जा रहे एशियाई व्यापार ने यूरोप और एशिया के संबंध में मौलिक परिवर्तन देखा। स्टींसगार्द ने इसे राज्य के भीतर राज्य कहा है क्योंकि यह एकदम नई प्रकार की संस्था थी जो पूंजी शेयरों की आधुनिक तकनीकी पर आधारित थी। इसने एशियाई व्यापार को न केवल इसकी मात्रा बढ़ाकर बल्कि एक नए व्यापार की शुरुआत करके इसे लाभदायक बना दिया। इसे 'ग्रामीण व्यापार' कहा जाता था। डच नेतृत्व में यूरोपीय जहाजों ने एशिया के अंतरक्षेत्रीय व्यापार में भाग लेना शुरू कर दिया। डच ने इंडोनेशियाई द्वीपसमूह में अपने उपनिवेश स्थापित करके पुर्तगालियों से मसाला व्यापार के एकाधिकार छीन लिया। जैसा कि डेनिस लौंबार्ड कहते हैं, डच ने एशियाई जगत की आर्थिक प्रणाली में कोई नया परिवर्तन नहीं किया। वे महज मौजूदा चैनेल और पैटर्न्स में घुस गए।

उत्तरी नीदरलैंड्स के डच गणराज्य का सबसे बड़ा प्रांत हालैंड था। 1622 में इसकी आबादी उत्तरी नीदरलैंड्स की कुल जनसंख्या अर्थात 14,00,000 की आधी यानी 6,70,000

थी। 1680 तक डच आबादी बढ़कर 8,83,000 हो गई जबकि कुल आबादी 19,00,000 थी। जनसंख्या में वृद्धि का यह रुख सोलहवीं सदी से ही स्पष्ट था। 1514 और 1622 के बीच जनसंख्या में लगभग 145 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। यों तो गांवों की आबादी क्रमिक रूप से बढ़ी लेकिन एम्स्टर्डम, लीडेन, हार्लेन, रोटरडेम, डेल्फ आदि में जनसंख्या विस्फोट हुआ। यह वृद्धि सत्रहवीं सदी के अंत तक जारी रही।

पूरी सोलहवीं सदी में डच लोगों का उल्लेखनीय विस्तार हुआ। औद्योगिक विकास पूर्व औद्योगिक युग के दो प्रमुख ऊर्जा संसाधनों—हवा और ऊष्मा ऊर्जा के वैज्ञानिक दोहन से गहरे रूप से जुड़ा था। इसका उपयोग न केवल पोत-निर्माण और कपड़ा उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता था बल्कि रिफाइनरी, ढलाईखानों, शराब कारखानों, बर्तन-निर्माण और ईंट निर्माण में कभी किया जाना था। अधिकांश वस्त्र विनिर्माता हालैंड, ट्वेंटी टिलबर्ग, लीडेन और हार्लेन में स्थित थे जहां ऊन, लिनेन और रेशम वस्त्र उद्योग और व्यापार स्थित थे। अन्य प्रातों के शहर औद्योगिक संपन्नता का लाभ नहीं ले सकते थे। लीडेन और हार्लेन दो महत्वपूर्ण वस्त्र निर्माण केंद्र थे। इन शहरों को विदेशी आप्रवासियों के आने से बहुत लाभ हुआ। इन आप्रवासियों में न केवल पूंजीपति व्यापारी बल्कि कुशल कारीगर भी शामिल थे। लीडेन के ऊन उद्योग ने हौंडस्कूट के फ्लेमिश कपड़ा कामगारों को आकर्षित किया। इन कारीगरों ने नई तकनीकी खास तौर पर हलके कपड़े बनाने की तकनीक अपने साथ लाए। इस शहर में वस्त्र उत्पादन 1584 के 27,000 थान प्रति वर्ष से बढ़कर 1664 में 1,44,000 थान हो गया। हालांकि सत्रहवीं सदी के अंत में फ्रांस से मिली प्रतिस्पर्धा और डच और अंगरेजों के बीच शुल्क युद्ध और बाद में फ्रांस के साथ व्यापारिक युद्ध के परिणामस्वरूप इस औद्योगिक केंद्र का पतन शुरू हो गया। हार्लेन के लिनन उद्योग में भी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह आयातित कपड़ों के विरंजन के लिए जाना जाता था। कच्चे माल पर आधारित उद्योगों और आधे तैयार वस्तुओं के विनिर्माता ट्रैफिकेन कहलाते थे। अंतिम रूप से तैयार वस्तुओं का एक बड़ा हिस्सा निर्यात किया जाता था। प्रमुख औद्योगिक गतिविधियां चीनी और तंबाकू प्रसंसाधन और मिट्टी के बर्तन से जुड़ी थी। ये उद्योग समुद्रों पर डच आधिपत्य पर निर्भर थे। पोत निर्माण उद्योग एम्स्टर्डम के उत्तर में जानदान के इर्द-गिर्द केंद्रित था। सत्रहवीं सदी में यह यूरोप में पोत-निर्माण का सबसे बड़ा केंद्र बन गया। इस उद्योग में बहुत बड़ी संख्या में रस्सी और पाल बनाने वालों, डॉक पर काम करने वालों और चालक दल के लोगों को रोजगार मिला हुआ था। जे.एल. प्राइस के अनुसार हॉलैंड की संपन्नता समाज के एक छोटे वर्ग तक सीमित नहीं थी बल्कि इससे शहर के मध्यम और निम्न वर्गों के लोगों को भी लाभ हुआ। यह मुख्य रूप से रेडरिंग प्रणाली के कारण हुआ। अनेक साधारण लोग अपनी बचत के छोटे से हिस्सों से हेरिंग बोट्स या क्रय कार्गोज के काम में व्यापार संघों के जरिए भाग ले सकते थे। उन्हें उनके हिस्से के अनुसार लाभ मिलता था।

वर्चस्व का डच से इंगलिश हाथों में हस्तांतरण था। आधी सदी से थोड़े से अधिक समय के भीतर छह युद्धों ने व्यापार के वर्चस्व को बुरी तरह प्रभावित किया। हालैंड की संपन्नता से न केवल पड़ोसी देशों बल्कि गणराज्य के भीतर अन्य प्रांतों को और नीदरलैंड्स से अन्य शहरों को ईर्ष्या होने लगी थी।

काफी लंबे समय तक यह माना जाता था कि ब्रिटिश नौपरिवहन कानूनों और फ्रांसीसी वाणिज्यवादी उपायों ने सत्रहवीं सदी के मध्य से नीदरलैंड्स के आर्थिक पतन की शुरुआत कर दी। लेकिन हाल के शोध खास तौर पर वैन डिलेन और वैनडेर कू के शोधकार्य न केवल इस परिकल्पना को खारिज करते हैं बल्कि हॉलैंड के आर्थिक ढांचे पर ध्यान केंद्रित करके इसके पतन के विभिन्न चरणों को भी उजागर करते हैं। इस विचार के अनुसार सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंगलैंड और फ्रांस के नौसैनिक हमलों ने डच एकाधिकार को पूरी तरह नष्ट नहीं किया। इंगलिश कानूनों में बहुत रियायतें थीं और ब्रेडा की संधि से डच को राइनलैंड में कुछ सुस्पष्ट लाभ मिले। यह सच है कि 1664 और 1667 के फ्रांसीसी सीमाशुल्कों का उद्देश्य डच को फ्रांस और उत्तरी यूरोप के बीच मध्यस्थ की उसकी भूमिका से हटाना था लेकिन निमेग्वेन की संधि से उसे काफी राहत मिली। बाद में डच को और भी रियायतें मिलीं। अतः सी.एच. विलसन के अनुसार डच विश्व बाजार पर हमलों से उसका एकाधिकार खतम नहीं हुआ। यूरोपीय परिवहन और वाणिज्य पर डच आधिपत्य उसकी भौगोलिक स्थिति, श्रेष्ठ संगठन और तकनीक और उसके पड़ोसी देशों के आर्थिक पिछड़ेपन के कारण सत्रहवीं सदी के अंत तक बना रहा। यहां तक कि अठारहवीं सदी के आरंभ में भी एम्स्टर्डम अन्न भंडार बना रहा जहां से बाल्टिक क्षेत्र के अनाज यूरोप के दक्षिणी राज्यों में पहुंचाए जाते थे।

नीदरलैंड्स के पतन के बारे में हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि इसका पतन इटली के समान अचानक नहीं हुआ। डच के पतन का उस समय पता चला जब इसके विश्व व्यापार में गिरावट आने लगी। 1730 के दशक तक आर्थिक उतार-चढ़ाव जारी रहा। दो स्पष्ट परिवर्तन ये थे : (क) अठारहवीं सदी के दौरान डच अन्न व्यापार की औसत मात्रा घट रही थी। कुछ तो फसल खराब होने के कारण और कुछ बाल्टिक अन्न व्यापार में गिरावट के कारण, क्योंकि ब्रेड की बढ़ती कीमतों के कारण इसका स्थान सस्ते खाद्यान्नों जैसे बक्व्हीट ने ले लिया था और (ख) डच को बढ़ती हुई विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ रहा था। हालैंड की स्थिति इतनी अच्छी नहीं रह गई थी कि ब्रिटेन और फ्रांस की आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा का लंबे समय तक मुकाबला कर सके। इंगलैंड ने रूसी, स्पैनिश और लिवेंट व्यापार में डच को कड़ी टक्कर दी। बाल्टिक क्षेत्र में ब्रिटिश व्यापारियों ने डच से आधा रूसी व्यापार छीन लिया। कोलबर्त के समय में फ्रांस ने डच व्यापार खास तौर पर फ्रेंच वेस्ट इंडीज से कच्ची चीनी के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया। इससे एम्स्टर्डम स्थित रिफाइनरीज पर बुरा असर पड़ा। कई तर्क

देते हैं कि हालैंड का पतन उसके व्यापार में कमी आने की वजह से नहीं हुआ बल्कि विश्व व्यापार में जबरदस्त वृद्धि होने से हुआ परंतु डच इस वृद्धि का लाभ नहीं उठा सके। उदाहरण के लिए आयात के मामले में इंगलैंड के विदेशी व्यापार में डच का हिस्सा 1696-97 से 1772-75 के बीच 14.6 प्रतिशत से घटकर 3.6 प्रतिशत और 41.5 से घटकर 12.7 प्रतिशत रह गया। (जे बी. मैंजर, *रिशर्चेज सूर ले रिलासयों इकॉनामिक औंत्र ला फ्रैंकेस ए ला हालैं दे पोंदा ला रिवोलूसियों स्त्रियों फ्रैंकेसे,* पृ. 8)

डच औद्योगिक क्षेत्र की तीन प्रमुख कमजोरियां थीं। पहली, वस्त्र उद्योग निर्यात पर आधारित था और यह विदेशी बाजारों पर निर्भर करता था। अत: इसे राज्य की संरक्षण नीति का कोई फायदा नहीं हुआ क्योंकि घरेलू मांग बहुत कम थी। अठारहवीं सदी तक डच के पतन में जनसंख्या भी एक वजह बन गई। जहां डच गणराज्य की आबादी दो मिलियन से भी कम थी वहीं ब्रिटेन और फ्रांस की आबादी क्रमश: 6.9 मिलियन और 20 मिलियन थी। इसके अलावा उनका साम्राज्य काफी बड़ा था। दूसरी, जैसा कि डच अपने अधिकांश कच्चे माल का आयात करते थे इसलिए लागत पर उनका नियंत्रण नहीं था। पहले डच को दो प्रमुख फायदे थे; वे मालभाड़ा की दर तय करते थे और उन्हें कम रखते थे। इससे वे कच्चे मालों के मूल्य नियंत्रण में रखते थे। लेकिन एक बार अन्य क्षेत्रों में पूंजी निर्माण शुरू हो जाने के बाद उनके ये फायदे समाप्त हो गए। पूंजी की उपलब्धता बढ़ गई और इंगलैंड की कम ब्याज दरों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने की क्षमता भी बढ़ गई। तीसरी, डच कपड़ा उद्योग में मजदूरी लागत अधिक लगती थी, क्योंकि वहां श्रमिक संगठित थे। मुद्रण, विरंजन और कपड़ा क्षेत्रों में अधिक मजदूरी दर थी। इसके अलावा डच उद्योगों को बहुत अधिक कर देना पड़ता था। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती थी। दूसरी तरफ आयरलैंड और स्कॉटलैंड के लिनेन उद्योगों को संरक्षण और सब्सिडी प्राप्त थी। इससे हार्लेम उद्योग को गहरा धक्का लगा। डच कपड़े ब्रिटिश बाजार से पूरी तरह बाहर हो गए। 1748 में ऐ ला पेल की संधि के बाद डच उद्योग पर जबरदस्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। औद्योगिक क्रांति आने से ब्रिटेन का आर्थिक प्रभुत्व स्थापित हो गया। विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण कई अन्य उद्योग भी प्रभावित हो रहे थे। अच्छे किस्म के शीशा के निर्माण में 1675 में इंगलैंड ने इसका स्थान छीन लिया। वहीं 18वीं सदी में अन्य महाद्वीपीय राज्यों में पोर्सलिन के आने से वर्तन उद्योग समाप्त हो गया। कागज उद्योग उन्नति कर रहा था खासकर फ्रांसीसी कागज पर भारी शुल्क लगाने के बाद।

बहरहाल, डच उद्योगों के क्रमिक ह्रास के साथ-साथ इसकी व्यापारिक और औद्योगिक गतिविधियां बैंकिंग और वित्तपोषण के वाणिज्यिक क्षेत्र की ओर बढ़ती रहीं। पूंजी की पर्याप्त उपलब्धता के कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार और कमीशन व्यवसाय से क्रेडिट बैंकिंग ज्यादा आसान था। समकालीन इतालवी यात्री के अनुसार, 1782 में भी एम्स्टर्डम का स्टॉक एक्सचेंज व्यस्ततम सराफा बाजार था। जैसा कि सी.आर. विलसन कहते हैं कि 'इस प्रकार

डच घराने यूरोप के एक भाग से दूसरे भाग में पूंजी का स्थानांतरण करके *पेमास्टर्स* का काम करने लगे।'

वाणिज्यिक क्रांति

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया कि सोलहवीं सदी में व्यापक आर्थिक विस्तार हुआ। यह काफी हद तक व्यापार के विस्तार, औपनिवेशिक साम्राज्य के उदय और वाणिज्यिक संपन्नता से जुड़ा था। जनसंख्या बढ़ने से उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बढ़ी। इससे बाजार में कारोबार बढ़ा। ग्रामीण जीवन की कठोरता खतम हो रही थी। विदेशों में औपनिवेशिक साम्राज्यों के विस्तार से यूरोप का वाणिज्यिक जगत विस्तृत हो रहा था। इन बढ़ते आर्थिक कारोबारों को चलाने के लिए वाणिज्यिक उपकरणों का महत्व महसूस किया गया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में व्यावसायिक जगत में वाणिज्यिक उपकरणो का उपयोग बढ़ गया। इससे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हुई और सामंतवाद से पूंजीवाद में परिवर्तन तेजी से हुआ। कई विद्वानों ने इसे 'वाणिज्यिक क्रांति' कहा है। इस वाणिज्यिक क्रांति का असर शहरी जीवन के हर क्षेत्र में हुआ और इसने अप्रत्यक्ष रूप से पूंजीवाद के विकास में योगदान किया। फिर भी वाणिज्यिक क्रांति के बारे में दो अलग-अलग विचार हैं। पहले (हेनरी हॉजर, रिचर्ड डरेनबर्ग आदि) के अनुसार सोलहवीं सदी का समय वित्त के इतिहास में निर्णायक था। दूसरी ओर कई विद्वानों का मानना है कि सोलहवीं सदी पर इतना अधिक जोर देना अनुचित है। ऋण, बैंकिंग और दोहरा खाता पद्धति जैसी महत्वपूर्ण वित्तीय तकनीकें यद्यपि काफी पहले विकसित हो चुकी थीं लेकिन सोलहवीं सदी में इनका प्रचलन बढ़ गया। हाल के शोध में इसकी अपेक्षाकृत अधिक विकासोन्मुखी व्याख्या की गई है जिसमें इस शताब्दी को मंदी की लंबी अवधि के बाद आए आर्थिक और वाणिज्यिक विकास का काल माना गया है।

वाणिज्यिक क्रांति के कारण

पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से व्यापार का विस्तार वाणिज्यिक उन्नति का एक प्रमुख कारण था। यद्यपि अंतरराष्ट्रीय व्यापार के उदय ने यूरोप में विरोधाभासी स्थिति पैदा कर दी थी फिर भी जो क्षेत्र व्यापार मार्गों और बाजार से जुड़े थे उनमें प्रबंधन और व्यापार के संगठन में महत्वपूर्ण उन्नति हुई। कई देश और क्षेत्र व्यापार संबंधों के कारण एक-दूसरे से जुड़ा हुआ अनुभव कर रहे थे। पंद्रहवीं सदी के अंत तक भूमध्यसागरीय क्षेत्र आर्थिक गतिविधियों का केंद्र था। दरअसल इतालवी नगर-राज्यों ने एशिया, उत्तरी अफ्रीका और यूरोप के साथ व्यापार करने के लिए अनेक वाणिज्यिक उपकरण पहले ही विकसित कर लिए थे। पुर्तगाल और स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्यों के उदय होने के साथ ही व्यापारिक गतिविधि अटलांटिक

तट पर स्थानांतरित हो गई। यूरोप के कुछ अन्य क्षेत्र बाजार की जरूरतों के कारण पश्चिमोत्तर यूरोप के उभरते पत्तन-नगरों से जुड़ गए। मध्य यूरोप ने अपने खनिज उत्पाद एंटवर्प को भेजना शुरू कर दिया था। यूरोप में बढ़ते धार्मिक राजनीतिक अथवा सामाजिक हलचल के कारण समुद्री मार्ग लोकप्रिय हो गए थे। औपनिवेशिक संबंधों का महत्व अब महसूस किया जा रहा था। समुद्री व्यापार न केवल सस्ता बल्कि अधिक तेज और आसान था। शेष यूरोप को खाद्यानों की आपूर्ति करने वाले एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में बाल्टिक क्षेत्र के उभरने के साथ ही पूर्वी और मध्य यूरोप का महत्व घटने लगा। बढ़ती आबादी के कारण खाद्य पदार्थों की मांग और बढ़ी। इस बार अटलांटिक तट पर स्थित देश व्यापार और वाणिज्य के मुख्य केंद्र बनकर उभरने लगे। व्यापार दुरभिसंधियों के विस्तार ने व्यापार संगठनों की प्रकृति को और भी जटिल बना दिया। इससे यूरोपीय व्यापार के ढांचे में जबरदस्त बदलाव आए।

मध्ययुग में व्यापार विलासिता की वस्तुओं तक सीमित था। इसकी ज्यादातर मांग सामंतों और राज्य के अधिकारियों द्वारा की जाती थी। सोलहवीं सदी से आबादी बढ़ने के कारण उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बढ़ी। मध्य वर्ग के उदय होने और उनकी बढ़ती संपन्नता के कारण यूरोपीय व्यापार का ढर्रा बदल गया। इससे व्यापार और उद्योग को बढ़ावा मिला। वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था की प्रकृति बदल गई। अनेक शहरी केंद्र उभर आए और शहरों का आकार बड़ा होने लगा। उपभोक्ता वस्तुओं की शहरी मांग और व्यवसाय के बड़े पैमाने के लिए अधिक कौशल और निपुणता की आवश्यकता थी। यह स्थिति नए वाणिज्यिक उपकरणों की स्वीकृति के लिए अनुकूल थी। सरकार और उद्यमियों ने नई संस्थाएं बनाईं और पुरानी संस्थाओं को निष्क्रिय कर दिया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान वैश्विक वाणिज्य के विस्तार के कारण ही तथाकथित वाणिज्यिक क्रांति आई।

सोलहवीं सदी में एक समानांतर आंदोलन मूल्य क्रांति था। जनसांख्यिकीय दबाव और चांदी की अधिक मात्रा में उपलब्धता के फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि हुई। मूल्य वृद्धि से व्यावसायिक गतिविधियां बढ़ीं और मुद्रा अर्थव्यवस्था का तेजी से विस्तार हुआ। इसके अलावा इससे बड़े पैमाने के वाणिज्यिक उद्यमों के लिए नए अवसर खुले क्योंकि मुद्रास्फीति की स्थितियां हमेशा अधिक लाभ की संभावना प्रदान करती हैं। व्यवसाय के पैमाने और नकदी के बढ़ते इस्तेमाल से व्यावहारिक कठिनाइयां खड़ी हो गईं। ऋण उपकरणों के जरिए बढ़ते व्यापार को सुगम बनाने के लिए मौद्रिक लेन-देन को अलग-तरह से करने की आवश्यकता थी। व्यावसायिक संस्थाओं को पुनर्गठित किया जाना था। खतरे लिए जाने थे। पूंजी उपलब्ध कराया जाना था। इन सब से यूरोप में वाणिज्य अर्थव्यवस्था की स्थापना में मदद मिली।

वाणिज्यिक क्रांति के तत्व

वाणिज्य व्यापार का संगठन है। यह भुगतान और संगठन के रूप में व्यवसाय को आसान बनाता है। वाणिज्य के ये विशिष्ट तत्व सोलहवीं सदी के दौरान सामान्य व्यापार में उभरे।

वाणिज्यिक जगत की पहली मूलभूत आवश्यकता पूंजी की उपलब्धता है। पंद्रहवीं सदी के अंत में औपनिवेशिक उद्यम उस समय के व्यापारी बैंकरों जैसे इतालवी राज्यों के व्यावसायिक घराने, खास तौर पर जनोआ, वैनेशिया और फ्लोरेंस के परिवारों और जर्मनी के आग्सवर्ग के फ्यूगर परिवार आदि द्वारा मुहैया कराए गए वित्त से चलते थे। व्यापार के विस्तार के लिए दीर्घकालिक पूंजी निवेश की आवश्यकता थी। यह निवेश न केवल समुद्रपारीय व्यापार में जहाजों को लगाने बल्कि माल खरीदने के लिए भी आवश्यक था। लाभ की संभावना ने कई बैंकरों और उद्यमियों को कई लाभकारी उद्यमों में निवेश करने के लिए प्रेरित किया। वाणिज्यिक उद्यमों ने पूंजीपति निवेशकों, व्यापारियों और कई बार यूरोपीय राज्यों के शासकों को अवसर प्रदान किए। आधुनिक बैंकों की अनुपस्थिति में व्यापारी बैंकर परिवार पूंजी संचय का कार्य करते थे। ऑग्सबर्ग के फ्यूगर्स और फ्लोरेंस के मेडिची परिवार इसके उल्लेखनीय उदाहरण थे। नए प्रकार के बैंकों की स्थापना से इन घरानों का उदय हुआ। ये राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के वाणिज्यवादी लक्ष्य को दरशाते हैं। बहरहाल आधुनिक बैंकिंग प्रणाली सत्रहवीं सदी के मध्य से ही शुरू हुई। इसके पहले बैंकिंग कार्य निजी बैंकरों द्वारा या तो व्यक्तिगत रूप में या पारिवारिक साझेदारी के रूप में किए जाते थे। सोलहवीं सदी के दौरान इतालवी और जर्मन बैंकरों का प्रभाव कम होने लगा और फ्रांस, हालैंड, फ्लैंडर्स और इंगलैंड में अनेक नए बैंकर उभरे। बैंकिंग प्रणाली एक विशिष्ट गतिविधि के रूप में अभी भी विकसित नहीं हुई थी और यह व्यावसायिक कार्यों से मिली-जुली थी। धीरे-धीरे कुछ फर्मों ने अपना पूरा ध्यान केवल बैंकिंग पर केंद्रित करने के लिए व्यापार संबंधों को छोड़ दिया। सरकार द्वारा वित्तपोषण और बैंकिंग के बीच संबंध सोलहवीं सदी की महत्वपूर्ण विशेषता थी। धीरे-धीरे सार्वजनिक और निजी बैंक अलग हो रहे थे। पहला सार्वजनिक बैंक पंद्रहवीं सदी में बार्सिलोना और जेनोआ में बना। निजी बैंकिंग प्रणाली की खामियों और दुरुपयोग के परिणामस्वरूप सोलहवीं सदी में सार्वजनिक बैंकों की मांग हुई। इसके अलावा पुराने व्यापारी बैंकरों की रुचि राज्य को ऋण देने में थी न कि आर्थिक उद्यमों में निवेश करने में। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में सार्वजनिक बैंक उभरने लगा। 1587 में वेनिस की सरकार ने बैंक ऑफ रियाल्टो की स्थापना की। यह बैंक धन जमा और मुद्रा का हस्तांतरण करता था। इसे ऋण देने की अनुमति नहीं थी। 1593 में इसी तरह का एक बैंक मिलान में खुला। 1609 में एम्स्टर्डम में स्थापित एक सार्वजनिक बैंक को धन

जमा करने और धन का स्थानांतरण करने का कार्य दिया गया। इसी प्रकार के बैंक 1619 में हैमबर्ग में और 1621 में न्यूरेनवर्ग में स्थापित किए गए। ये बैंक अतिरिक्त धन को जमा करने के लिए एक सुरक्षित स्थान मुहैया कराकर और धन एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरण करके महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। बैंकों से व्यापार में काफी सहूलियत हुई।

बैंकिंग प्रणाली के उदय के साथ ही वित्तीय लेन-देन की नई पद्धतियां भी अपनाई गईं। वाणिज्यिक क्रांति के आने में नए क्रेडिट उपकरणों और सुविधाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। यह सच है कि इनमें से कुछ उपकरण इतालवी राज्यों में पहले से ही प्रचलन में थे। फिर भी सोलहवीं सदी से यूरोपीय व्यावसायियों ने इन उपरकणों को न केवल लोकप्रिय बनाया बल्कि इनकी हैंडलिंग की तकनीक को परिष्कृत किया जिससे यूरोपीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद का प्रवेश सुगम हो गया। घरेलू और बाहरी व्यापारिक कारोबारों में बिल्स ऑफ एक्सचेंज का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाने लगा। इसका फायदा यह हुआ कि अब भुगतान करने के लिए बड़ी मात्रा में धन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता नहीं थी जो कि न केवल असुविधाजनक बल्कि खतरनाक भी था। अब एंटवर्प स्थित कोई व्यापारी एंटवर्प के बैंकर द्वारा जारी हुंडी के जरिए लिस्बन में वस्तुएं खरीद सकता था। बाद में बैंकर और उसके एजेंट के बीच लेखों का निपटान किया जा सकता था। यही हुंडी अंतिम रूप से जमा करने के पहले कई लोगों को दी जा सकती थी। यह मंजूरी की रिवायत पर आधारित थी और जिस व्यक्ति के नाम पर हुंडी जारी की जाती थी वह इसे स्वीकार करता था। इसके अलावा अन्य क्रेडिट उपकरण थे जो सोलहवीं सदी में खास तौर पर हालैंड, एंटवर्प और फ्रांस में प्रचलन में आए। इनमें वचन पत्र शामिल थे जो धारक को देय होते थे। ये बैंक नोट्स के समान होते थे। दरअसल सत्रहवीं सदी के दौरान बैंक नोट्स जारी करने की प्रथा इसी से निकली। इस पद्धति से बिल में बट्टा काटना संभव हुआ और व्यापारी को उसकी मुद्रा समय से पहले मिल जाती थी और इससे बैंकर को आय होती थी। कुछ बैंकरों ने केवल विदेश व्यापार संबंधी हुंडियों में विशिष्टता हासिल करनी शुरू कर दी जबकि अन्यों ने अपनी गतिविधियां घरेलू व्यापार तक सीमित रखीं। इन क्रेडिट उपकरणों की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी परक्राम्यता थी यानी हुंडियों का एक व्यक्ति से दूसरे के पास हस्तांतरण और नकदी में इसका रूपांतरण। इसके पृष्ठांकन और स्वीकृति में अनेक विधिक समस्याएं थीं। लेकिन सत्रहवीं सदी के अंत में धीरे-धीरे इनका समाधान कर लिया गया। क्रेडिट उपकरणों की परक्राम्यता बैंकिंग के जरिए वाणिज्यिक कारोबार की मुख्य विशेषता थी। व्यापार की मात्रा बढ़ाने में नकदी के बदले हुंडी, साख पत्र, वचन पत्र और बैंक नोट्स के जरिए ऋण व्यापार का काफी महत्व था क्योंकि बैंकिंग और व्यावसायिक फर्मों के ऋण संसाधनों को उनके पास वास्तव में उपलब्ध नकदी से कहीं अधिक बढ़ाया जा सकता था।

बैंकिंग प्रणाली के आने और क्रेडिट उपकरणों के बढ़ते उपयोग से बीमा की अवधारणा मजबूत हुई। समुद्रपारीय उद्यमों में खतरे बहुत अधिक थे। लंबी दूरी के व्यापार में लगे फर्मों और व्यक्तियों को समुद्री यात्रा के दौरान न केवल प्राकृतिक आपदाओं बल्कि समुद्री लुटेरों का भी सामना करना पड़ता था। इससे खतरे को कवर करने के लिए बीमा अनिवार्य हो गया। पंद्रहवीं सदी के आरंभ से नौपरिवहन बीमा शुरू हो गया। ये बैंकरों या व्यापारियों द्वारा किए जाते थे। 1504 में केवल एंटवर्प में ही लगभग 600 लोग बीमा से अपनी रोजी-रोटी चला रहे थे। धीरे-धीरे अलग-अलग तरह के बीमा शुरू किए गए जैसे जर्मनी के हैमबर्ग में आग बीमा।

व्यापारिक गतिविधियां काफी हद तक यातायात के बेहतर साधनों पर निर्भर करती थीं। सोलहवीं सदी के दौरान यद्यपि खराब सड़कों और वर्षा ऋतु और बहुत अधिक ठंडे समय में व्यापार मार्गों में परिवर्तन के कारण परिवहन प्रणाली काफी कमजोर रही, लेकिन नौपरिवहन ने कुछ हद तक इन समस्याओं को हल कर दिया। नदी के जरिए यात्रा भी लोकप्रिय हो रही थी। इससे परिवहन लागत कम हो गई। संचार प्रणाली में भी स्पष्ट सुधार हुए। डाक सेवाओं के शुरू होने से व्यापार की खबरें अलग-अलग व्यापारिक केंद्रों में पहुंचने लगीं। सोलहवीं सदी के आरंभ में स्पेन, फ्रांस और इंगलैंड में राज्य डाक सेवाएं शुरू की गईं। सत्रहवीं सदी तक यूरोप के सभी प्रमुख शहर एक-दूसरे से अखबारों और अन्य जर्नल्स के माध्यम से जुड़ गए।

यूरोपीय वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के विस्तार से व्यापार संगठनों के रूपों में भी बदलाव आए। यद्यपि साप्ताहिक बाजारों की अवधारणा व्यापारिक जीवन के केंद्र में रही, लेकिन यूरोप के महत्वपूर्ण वाणिज्यिक नगरों में स्थायी बाजार भी उभरने लगे। बाजारों, दुकानों और फेरीवालों के अलावा विनिमय की केंद्रीय अधिसंरचनाएं स्थापित की गईं जोकि विशेषज्ञ ओपेरेटरों द्वारा संचालित की जाती थीं। यह निर्वाह अर्थव्यवस्था से विनिमय अर्थव्यवस्था में संक्रांति का समय था जो पूंजीवादी दिशा में अग्रसर हो रही थीं। यहां व्यापार मुख्य रूप से उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच किए जाते थे। धीरे-धीरे व्यापारियों की भूमिका बढ़ गई। बड़े शहरों में वस्तुएं खुले बाजार से बड़े व्यापारियों द्वारा स्थापित गोदामों में जाने लगीं। वस्तुओं को बेचने और इसका भंडारण करने के लिए नीलामी की प्रथा और खुदरा व्यापार की अवधारणा मजबूत हुई। इससे बिचौलियों का उदय हुआ जो इस नई विनिमय प्रणाली से लाभ कमाते थे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार में विस्तार के लिए व्यावसायिक संघटन की प्रकृति में बदलाव की आवश्यकता थी। मध्य काल के अंत में व्यापार व्यक्तियों या पारिवारिक साझेदारी के रूप में संघटित था। इटली में *कमेंडाज* या *सोसाइटाज* जैसी साझेदारी के आधार पर व्यावसायिक संगठन बनाए जाते थे लेकिन ये अल्पकालिक संगठन थे। ये केवल एक यात्रा के लिए या बहुत कम समय के लिए बनाए जाते थे। व्यापार के विस्तार

से संगठन का आकार और रूप बदलने लगा। पहले साझेदारी में इसके सदस्यों की कर्ज या हानियों संबंधी असीमित देयता थी। वे बड़े खतरों का सामना या बड़े पूंजी निवेश नहीं कर सकते थे। विदेशी भूभागों के खुलने और बड़ी मात्रा में व्यापार के विस्तार से नई समस्याएं उत्पन्न हो गईं। जैसा कि डच ने अपना व्यापार बाल्टिक क्षेत्र में अधिक बढ़ाया इसलिए डच फर्मों के लिए बाल्टिक बंदरगाह पर एक साझेदार बनाना और उसे वहां के व्यापार की देखरेख के लिए स्थायी रूप से रखना आम बात हो गई। इसी प्रकार कभी-कभी स्पैनिश फर्में अपने साझेदार सेविले और अमरीकी उपनिवेश में एक एजेंट के रूप में रखती थीं। इससे डच, फ्रांसीसी और इंगलिश व्यापारी स्पैनिश व्यापारियों के साथ गुप्त साझेदारी समझौतों के जरिए स्पैनिश सरकार के विनियमों से बच सकते थे जो विदेशियों को अमरीकी व्यापार में भाग लेने से रोकते थे। धीरे-धीरे अधिक उपयुक्त व्यावसायिक संगठन विकसित करने के प्रयास किए गए। इस प्रकार का एक संगठन विनियमित कंपनी थी।

विनियमित कंपनी की शुरुआत मध्य युग में देखी जा सकती है। खास तौर पर इंगलैंड में जहां मर्चेंट स्टेपलर्स बनाए गए लेकिन पूर्ण विकसित रूप में नहीं। विनियमित कंपनी आंशिक रूप से साझेदारी और आंशिक तौर पर श्रेणी धर्म व्यवस्था (गिल्ड) रूपी थी। कुछ मामले में यह ज्वाइंट स्टाक कंपनी के समान थी जो बाद में विकसित हुई। यह कंपनी एक विशिष्ट प्रकार के व्यापार पर एकाधिकार, इसके दोहन और नियंत्रण के लिए व्यापारियों का संघ थी। इसके सदस्य कुछ विशिष्ट विनियमों का अनुपालन करने के लिए सहमत होते थे लेकिन वे अपने संसाधनों को एक साथ नहीं मिलाते थे बल्कि वे परस्पर लाभ के लिए सहयोग करने के लिए सहमत होते थे। ये कंपनियां चार्टर्ड थीं। इन्हें अपनी-अपनी सरकारों से एकाधिकार दिए जाते थे। ये विनियमित कंपनियां थीं क्योंकि ये व्यापार के लिए निर्दिष्ट नियमों का पालन करती थीं। ये विदेशों में साझा व्यापार केंद्र रखती थीं और एकाधिकार का लाभ उठाती थीं। इनकी सरकारें इनके एकाधिकार का हनन करने वालों से इन्हें बचाती थीं। इंगलैंड में इस प्रकार की कई कंपनियां थीं जैसे मर्चेंट एडवेंचरर्स, ईस्टलैंड कंपनी, मस्कोवी कंपनी और लिवांत कंपनी।

व्यापार की बढ़ती मात्रा और वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के विस्तार से इस संगठन का रूप बदल गया। विनियमित कंपनी को एक नए प्रकार के संगठन में तबदील कर दिया गया जिसे ज्वाइंट-स्टाक कंपनी (संयुक्त साझेदारी कंपनी) कहा जाता था। यह अधिक सुसंगठित थी और इसका दायरा भी बड़ा था। हालांकि संगठन का यह रूप भी जर्मनी के लिए बिलकुल नया नहीं था। वहां खनन कार्य ज्वाइंट-स्टाक के आधार पर चलता था। खनन में भारी निवेश के कारण अलग-अलग व्यापारी अकेले सारा खनन कार्य नहीं कर सकते थे इसलिए खनिज के भंडार *कुक्सेन* में विभाजित थे जिनका स्वामित्व अनेक व्यापारियों के पास संयुक्त रूप में था। ज्वाइंट-स्टाक कंपनी की मुख्य विशेषता व्यक्तियों

का यूनियन नहीं बल्कि पूंजी का यूनियन थी। अनेक लोग संभावित निवेशकों को दिए जाने वाले शेयर खरीदते थे। वास्तविक शेयरधारक कंपनी का कार्य चुने हुए निदेशकों को सौंप देते थे और अपने निवेश के अनुपात में हानि या लाभ प्राप्त करते थे। एक ज्वाइंट-स्टाक कंपनी कई प्रकार के लाभ देती थी। यह स्थायी संगठन के रूप में काम करती थी। किसी सदस्य की मृत्यु या इससे हटने से कंपनी विघटित या पुनर्गठित नहीं की जाती थी। इसके अलावा शेयरों की बिक्री से इसके पास काफी अधिक संसाधन एकत्र हो जाते थे। यह कंपनी अन्य किसी भी किस्म की साझेदारी से अधिक पूंजी एकत्र कर सकती थी। इसकी प्रकृति और क्रियाकलाप आधुनिक निगमों के कार्यकलाप से मिलती-जुलती थी। आरंभ में ज्वाइंट-स्टाक कंपनी का निर्माण काफी धीमा और झिझक के साथ किया गया। शुरू-शुरू में इंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी और डच ईस्ट इंडिया कंपनी (*ऊस्ट इंडिस्चे कोंपेनि*) जैसी ज्वाइंट-स्टाक कंपनियां प्रत्येक समुद्री यात्रा के अंत में अपनी पूंजी और लाभ का बंटवारा कर लेती थीं। इससे शेयरधारकों में भ्रम पैदा हो जाता था। समय बीतने के साथ ये कंपनियां स्थायी स्वरूप की बनती गईं। डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1602 में हुई थी। इससे यह आशा की गई थी कि यह पहले दस वर्षों में अपने निवेशकों का भुगतान कर देगी। लेकिन यह ऐसा नहीं कर सकी। इसने अपने शेयरधारकों को सुझाव दिया कि वे अपने शेयर एम्स्टर्डम स्टाक एक्सचेंज में इच्छुक क्रेताओं को बेचकर अपने लाभ प्राप्त कर लें। इससे स्टाक बाजार में कंपनी के शेयर्स बेचने की प्रथा चल पड़ी। ज्वाइंट-स्टॉक कंपनी में साधारण लोग भी अपनी बचत इन बड़े उद्यमों में निवेश करके नियमित लाभांश प्राप्त कर सकते थे। यद्यपि ज्वाइंट-स्टाक कंपनियां मुख्य रूप से लंबी दूरी के व्यापार को चलाने और वाणिज्यिक उद्यमों में भाग लेने के लिए बनाई गई थी लेकिन बाद में ये औद्योगिक उद्यमों में भी शामिल हो गईं। अधिकांश व्यापार कंपनियां चार्टर्ड कंपनियां थीं क्योंकि इन्हें संबंधित सरकार से अपने विशेषाधिकारों, एकाधिकार और उन विशिष्ट क्षेत्रों के लिए चार्टर प्राप्त करनी पड़ती थी जहां से ये व्यापार कर सकती थीं। 1568 में इंगलैंड में दो ज्वाइंट-स्टाक कंपनियां दो बिलकुल अलग-अलग प्रयोजनों के लिए बनाई गईं—तांबा या पीतल के तारों का विनिर्माण करने के लिए मिनरल एंड बैटरी वर्क्स कंपनी; और चांदी और तांबे का खनन करने के लिए रॉयल कंपनी। सत्रहवीं सदी के दौरान खास तौर पर राज्य की नीतियों पर वाणिज्यवादी प्रभाव के कारण इस प्रकार की कंपनियां अधिक लोकप्रिय हो गईं।

वाणिज्यिक क्रांति का एक रोचक पहलू यूरोप के वाणिज्यिक नगरों में *स्टॉक एक्सचेंज* का निर्माण था। स्टाक एक्सचेंज केंद्र सराफा (वोर्स) भी कहलाते थे जिसकी उत्पत्ति ब्रूजेज में हुई। ब्रोदेल के अनुसार स्टाक एक्सचेंज बैंकरों, व्यापारियों और व्यावसायियों, विनिमय मुद्रा व्यापारियों और बैंकर्स एजेंट्स, दलालों और निवेशकों का मिलन स्थल था। हालांकि इन एक्सचेंजों की उत्पत्ति के कोई ठोस प्रमाण नहीं है लेकिन एम्स्टर्डम में 1608 में एक नए

एक्सचेंज की स्थापना हुई जबकि पुराना एक्सचेंज शायद 1530 का बना था। यह ब्रूजेज में 1409 में, एंटवर्प में 1460 में, लियों में 1462 में, लंदन में 1554 में, पेरिस में 1563 में, बोर्दो में 1564 में स्थापित किया गया था। यह क्रम पूरी सत्रहवीं सदी में चलता रहा। एक समयुगीन स्रोत के अनुसार सत्रहवीं सदी के मध्य तक लगभग सभी एक्सचेंज शोर-शराबे से भरे सौदेबाजी के स्थान नजर आते थे। बहरहाल एम्स्टर्डम स्थित स्टाक एक्सचेंज ने न केवल पैमाने में बल्कि संगठन के रूप में काफी उन्नति की। 1631 में इसके लिए एक नए भवन का निर्माण किया गया जहां बिलकुल आधुनिक रूप में सट्टेबाजी की जाती थी। एम्स्टर्डम स्टाक बाजार के नए तत्व थे—मात्रा, बाजार की अस्थिरता और प्रचार तथा कारोबारों में सट्टेबाजी विषयक स्वतंत्रता (ब्रोदेल, *दि व्हील्स ऑफ कामर्स*, पृ. 99)। सट्टेबाजी में कई निवेशकों को जबरदस्त फायदा हुआ जबकि कई व्यापारियों ने सब कुछ गंवा दिया। इस स्टॉक एक्सचेंज का मुख्य योगदान यह था कि इसने शेयरों की खरीद और बिक्री और सार्वजनिक निवेश के द्वारा बड़े पूंजीवादी उद्यमों को संवर्द्धित किया।

वाणिज्यिक क्रांति से मुद्रा अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। व्यवसाय और उद्योग के विकास से एक समान मौद्रिक प्रणाली और वित्तीय स्थिरता की आवश्यकता महसूस हुई। कुछ हद तक इस समस्या का समाधान सरकार द्वारा मुद्रा के एक मानक रूप को अपना कर किया गया। सत्रहवीं सदी में भी समानता की प्रक्रिया पूरी नहीं हुई लेकिन एक समान मुद्रा लाने के प्रयास किए गए जैसा कि इंगलैंड में रानी एलिजाबेथ के समय में और फ्रांस में कोलबर्त के समय में किए गए थे। क्रेडिट और वाणिज्यिक कारोबारों के नए उपकरणों को लोकप्रिय बनाकर वाणिज्यिक क्रांति ने सोलहवीं सदी के अंत में मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा कर दी। इससे मूल्य में अस्थिरता पैदा हो गई। कभी तेजी तो कभी मंदी का दौर शुरू हो गया। सट्टेबाजी के कारण इसमें और वृद्धि हुई। यह इंगलैंड में अठारहवीं सदी के आरंभ में 'साऊथ सी बबल' के द्वारा स्पष्ट रूप में दिखा। नतीजतन शेयर बाजार पूरी तरह धराशायी हो गया। मिसिसिपी कंपनी के मामले में फ्रांस में भी यही हाल हुआ। यह कहना कठिन है कि वाणिज्यिक क्रांति ने पूंजीवाद के उदय में किस प्रकार योगदान किया। लेकिन व्यापार के विस्तार, ऋण उपकरणों के विकास, बीमा योजनाओं और सट्टा बाजारों से निश्चित ही प्रतिस्पर्धा का एक माहौल बना और अपेक्षाकृत अधिक बेहतर संगठन बने। ये प्रवृत्तियां बाद में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण पहलू बन गईं।

मूल्य क्रांति

मूल्य वृद्धि सोलहवीं सदी के यूरोप की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस पूरी सदी के दौरान मूल्यों में निरंतर वृद्धि जारी रही। इसका असर इतना व्यापक हुआ कि इतिहासकारों ने इसे 'मूल्य क्रांति' का नाम दिया है। यह मूल्य क्रांति कैसे हुई, कब शुरू हुई जैसे प्रश्नों का उत्तर देना थोड़ा जटिल है और इस बारे में एक राय भी नहीं है। इस मूल्य क्रांति के आर्थिक और सामाजिक परिणामों ने अनेक देशों के कई इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनके द्वारा दी गई व्याख्याओं से हमें पूर्व आधुनिक यूरोप के सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक शक्तियों की भूमिका समझने में मदद मिलती है।

'मूल्य क्रांति' शब्द का इस्तेमाल मुद्रास्फीति की एक लंबी अवधि के लिए किया गया है हालांकि इस बारे में कभी-कभी असहमति भी जताई जाती रही है। यह सच है कि इसमें कुछ अतिरंजना भी है। मध्यकाल के स्थिर मूल्यों और सत्रहवीं सदी के दौरान मूल्य स्तर में गिरावट या स्थिरता के साथ जब सोलहवीं सदी के मूल्य स्तर की तुलना की जाती है तो यह मूल्य वृद्धि क्रांतिकारी प्रतीत होती है। लेकिन आज के मानकों के हिसाब से यह नगण्य दिखती है। यद्यपि वार्षिक मूल्य वृद्धि मुश्किल से 2 से 3 प्रतिशत थी, सोलहवीं सदी के दौरान थोड़े समय के लिए मूल्यों में उतार-चढ़ाव रहा और वास्तविक मूल्य वृद्धि इस सदी के मध्य से देखने में आई। इस मुद्रास्फीति का संचयी प्रभाव कुछ विद्वानों के लिए विस्मयकारी था। यहां यह बात गौर करने लायक है कि सभी वस्तुओं की कीमतें समान रूप से नहीं बढ़ीं। अलग-अलग उत्पादन क्षेत्रों में मुद्रास्फीति की दर भिन्न-भिन्न थी।

मूल्यों में वृद्धि पहले-पहल तब नोटिस की गई जब खाद्यान्नों की कीमतों में वृद्धि का रुख दिखा। इंगलिश, फ्रांसीसी और अलसेसियन स्रोतों से पता चलता है कि कृषि उत्पादों के मूल्यों में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई जिसके बाद पशुपालन संबंधी उत्पादों में। कपड़ों या धातुओं जैसी विनिर्मित वस्तुओं के मामले में मूल्य वृद्धि न्यूनतम थी। दक्षिणी नीदरलैंड्स और नॉर्वे में अनाजों की कीमतें मछली और पनीर की कीमतों से अधिक तेजी से बढ़ीं। 1460 और 1559 के बीच स्वीडेन में जौ और राई की कीमतें मक्खन, लौंग, काली मिर्च और लोहा की कीमतों से बहुत अधिक हो गईं। 1550 और 1650 के बीच इंगलैंड में अनाजों और लकड़ी के मूल्यों में चार गुना वृद्धि हुई जबकि मांस, पशु, ऊन और धातु की कीमतें दोगुनी हो गईं। भवन निर्माण सामग्री की कीमतों में तीन गुना से थोड़ा कम बढ़ोतरी हुई लेकिन कपड़ों की कीमतों में काफी कम वृद्धि हुई। 1520 और 1621 के बीच जर्मनी के स्पेयर शहर में जबरदस्त मूल्य वृद्धि हुई। राई की कीमत पंद्रह गुना, मटर चौदह गुना, गेहूं तेरह गुना और नमक की कीमत छह गुना बढ़ गई। वहीं मजदूरी में केवल दो से साढ़े तीन गुना वृद्धि हुई। फ्रांस में पंद्रहवीं सदी के अंत से लेकर सत्रहवीं सदी के आरंभ तक अनाज का मूल्य दस गुना बढ़ गया और पशुओं का आठ गुना। सत्रहवीं सदी के आरंभ तक अनाज के थोक मूल्यों में औसतन पांच गुना वृद्धि हुईं। फ्रांस में इसमें सात गुना बढ़ोतरी हुई वहीं स्पेन में यह बढ़ोतरी और भी अधिक थी। हैमिल्टन के अनुसार पिछली सदी की तुलना में 1601 से 1610 तक स्पेन में कीमतें 3.4 गुना, फ्रांस में 2.2 गुना, लीडेन जोकि मशहूर डच वस्त्र केंद्र था, में 3 गुना से अधिक बढ़ गई वहीं अलसेक, इटली और स्वीडेन में यह दोगुनी हो गई थी। ब्राऊन और हॉपकिंस के अनुसार, यदि हम 1451 और 1475 की अवधि

में 100 सूचकांक मानते हुए 1475 और 1620 के बीच मूल्य वृद्धि की तुलना करें तो खाद्यान्न सूचकांक इंगलैंड में 555, फ्रांस में 729 और अलसेक में 517 तक पहुंच गया था। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादों का सूचकांक इंगलैंड में 265 तक फ्रांस में 355 और अलसेक में 294 तक पहुंच गया था। मूल्य क्रांति की वास्तविक स्थिति का पता लगाना कठिन है क्योंकि विभिन्न उत्पादों के आंकड़े प्राप्त करना आसान नहीं है। केवल कुछ क्षेत्रों और खास वस्तुओं के बारे में ही साक्ष्य उपलब्ध हैं। अत: सोलहवीं सदी के लिए सही-सही मूल्य सूचकांक का संकलन करना करीब-करीब असंभव है। केवल कुछ स्थानों के और सीमित वस्तुओं के आंकड़े उपलब्ध हैं। कई आंकड़े मोटे अनुमानों पर आधारित हैं और इसलिए उनका विश्लेषण करना कठिन है। फिर भी कुछ इतिहासकारों के श्रमसाध्य अनुसंधान कार्य द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के आधार पर एक सामान्य प्रवृत्ति का पता चलता है और वह यह है कि खाद्यानों की कीमतों में सबसे ज्यादा बढ़ोतरी हुई जबकि विनिर्मित वस्तुओं की कीमतों में इसी अनुरूप में वृद्धि नहीं हुई।

इस कथित मूल्य क्रांति की वास्तविक शुरुआत के सवाल पर आम सहमति नहीं है। कुछ विद्वान मानते हैं कि इसकी शुरुआत पंद्रहवीं सदी के अंत में ही हो गई थी, वहीं कुछ का मानना है कि यह 1500 के बाद शुरू हुई। *कैंब्रिज इकानॉमिक हिस्टरी ऑफ यूरोप* के अनुसार सोलहवीं सदी की मूल्य क्रांति के पहले भी मूल्य क्रांति हुई थी। इसमें मूल्य वृद्धि धीमी थी; 1450 और 1500 के बीच शायद एक प्रतिशत वार्षिक वृद्धि थी। इसमें बहुत तेजी से चक्रीय उतार-चढ़ाव भी हुआ लेकिन वृद्धि का रूप बिलकुल साफ था। इस पूर्व-मूल्य क्रांति को अलग-अलग समयों में स्थान और क्षेत्र के आधार पर महसूस किया गया। स्पेन और शायद पुर्तगाल को छोड़कर इसे लगभग पूरे यूरोप में महसूस किया गया। लेकिन यह मूल्य वृद्धि निश्चित सीमा तक ही रही। इसी प्रकार इसके अंतराल के सवाल पर भी इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। शायद यह अलग-अलग क्षेत्रों में उनकी आर्थिक शक्ति और क्षमता के अनुसार अलग-अलग थी। 1580 के दशक में स्पेन में मंदी के शुरुआती संकेत मिले। इटली में भी सोलहवीं सदी के अंतिम दशक में इसी प्रकार के संकेत थे। जर्मनी में 1620 के दशक के आस-पास मंदी शुरू हुई। उत्तरी यूरोप में सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विकास धीमा होने के संकेत मिलते हैं लेकिन मूल्यों में गिरावट के नहीं। इतिहासकार मानते हैं कि यूरोप में मूल्यों का एक चक्रीय दर्रा था। बारहवीं और तेरहवीं सदी में कीमतें तेजी से बढ़ीं, चौदहवीं सदी और पंद्रहवीं सदी की तीन चौथाई अवधि में इसमें धीरे-धीरे गिरावट आई। इसके बाद 1480 के दशक से 1620 के दशक तक मूल्यों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई और तत्पश्चात लगभग एक सदी तक एक और मंदी का दौर रहा। अठारहवीं सदी में कीमतें फिर से बढ़ने लगीं। पीयर शानु कहते हैं कि मूल्य क्रांति के समय में 1504 से 1550 के बीच मूल्यों में लगातार बढ़ोतरी हुई जिसके बाद 1550 से 1562-63 तक अपेक्षाकृत छोटी मंदी का दौर रहा। अगले पचास वर्षों तक विस्तार और मूल्य वृद्धि हुई

और इसके बाद मंदी चालू हो गई। अत: यूरोप के अलग-अलग भागों में मूल्य वृद्धि का अंतराल भिन्न-भिन्न था जो कई कारकों पर निर्भर करता था।

ग्राफ 6.1 और ग्राफ 6.2 दोनों 25 वर्षों के औसत पर आधारित हैं और सिक्कों में चांदी की मात्रा 1501 से 1525 की अवधि के लिए 100 के सूचकांक पर आधारित है। प्रत्येक ग्राफ से पता चलता है कि अनाज के मूल्यों में सबसे अधिक वृद्धि हुई और इसके बाद औद्योगिक उत्पादों के मूल्यों में। यह अंतर एक देश से दूसरे देश में अलग-अलग था। इन सभी आलेख चित्रों में मजदूरी में सबसे कम वृद्धि दिखती है। आस्ट्रिया में मजदूरी का स्तर आधार बिंदुओं यानी पंद्रहवीं सदी के 95 प्रतिशत से भी नीचे चला गया। इंगलैंड में मजदूरी में 131 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। फ्रांस में यह 126 प्रतिशत, जर्मनी में 157 प्रतिशत और पोलैंड में 165 प्रतिशत बढ़ी।

वास्तविक मजदूरी में गिरावट या अनाज के मूल्यों में वृद्धि के समान मजदूरी में वृद्धि नहीं हो सकी। इसकी व्याख्या इतिहासकारों ने अलग-अलग ढंग से की है। फ्रांस के विद्वान इसका कारण पंद्रहवीं सदी के मध्य में ढूंढते हैं जब राज्य ने आमदनी पर कर लगाया। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यूरोप के कई देशों में स्थिति इसकी उलट थी जहां चौदहवीं सदी के अंत में और पंद्रहवीं सदी के आरंभ में मजदूरी संबंधी जबरदस्त कराधान और सख्त नियम बनाए गए थे और मजदूरी स्तर में वृद्धि हो रही थी। सोलहवीं सदी में मजदूरी में कमी के अनेक कारण बताए गए हैं। इंगलैंड में बाड़ों को कृषि संबंधी बेरोजगारी और मजदूरी में कमी के लिए दोषी ठहराया गया। लेकिन जर्मनी में कोई बाड़ आंदोलन नहीं था फिर भी मजदूरी दरें घट रही थीं। स्मॉलर शायद पहले विद्वान थे जिन्होंने इस प्रवृत्ति के लिए मुद्रा के अवमूल्यन पर जोर दिया। वहीं जे.यू. नेफ तर्क देते हैं कि मजदूरी स्तर को मूल्य-स्तर से काफी पीछे बताने वाले विचार बहुत अधिक अतिरंजित हैं। यदि मजदूरी दर मूल्यों से सचमुच इतना पीछे होती, जितना बताया जाता है तो औद्योगिक वस्तुओं की मांग नहीं होती। हाल के वर्षों में विद्वानों ने जनसंख्या वृद्धि पर जोर दिया है जिससे मजदूर अधिक हो गए और नतीजतन मजदूरी में कमी आई।

मूल्य क्रांति की दूसरी विशेषता यह थी कि पशु उत्पादों की कीमतें अनाजों की कीमतों के समान नहीं बढ़ीं। इसकी व्याख्या आय के अनुपात के रूप में इन दोनों किस्मों की वस्तुओं की मांग के लोच के रूप में की जा सकती है। यानी मूल्य वृद्धि या क्रय शक्ति में कमी के साथ ही क्रेता सस्ती खाद्य वस्तुएं खरीदने की ओर उन्मुख हो सकते हैं, अनाज के साथ ऐसा नहीं है।

मूल्य क्रांति के कारण

मूल्य क्रांति की शुरुआत के बारे में इतिहासकारों ने विभिन्न सिद्धांत और विश्लेषण दिए हैं। यूरोप के आर्थिक इतिहास में जिन विषयों पर सबसे अधिक शोध हुए हैं यह उनमें से एक

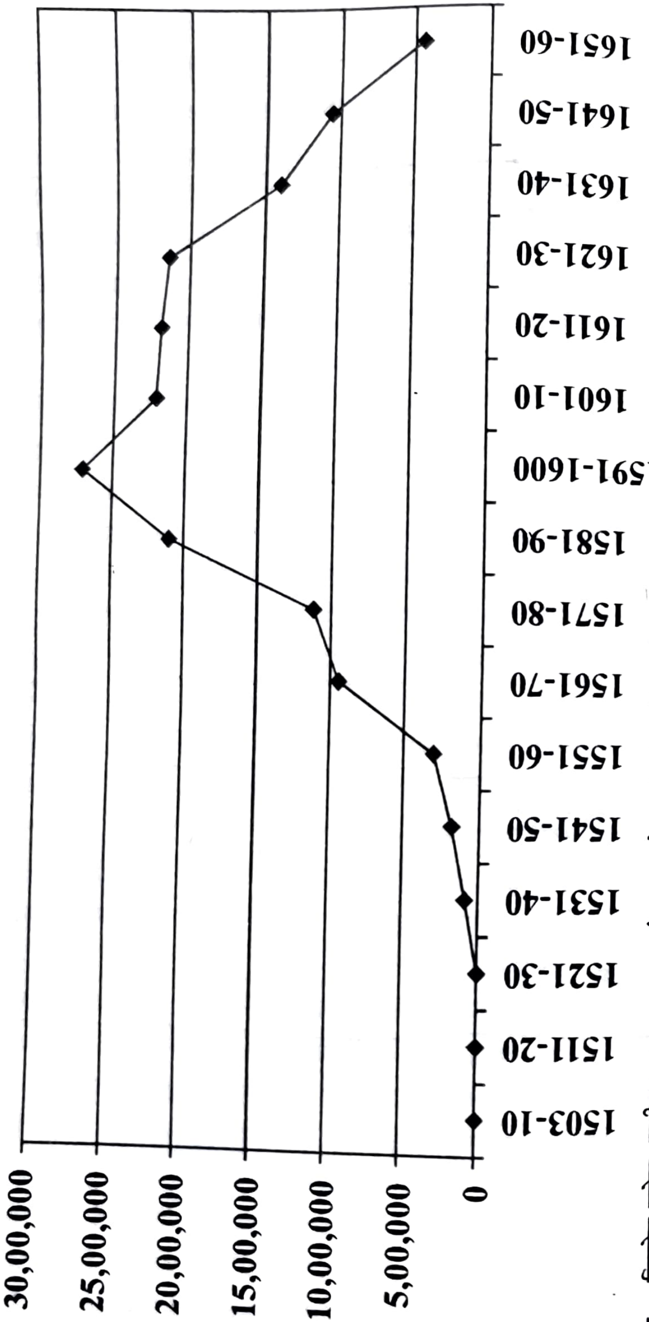

स्रोत : विल्हेम एबेल, एग्रीकल्चरल फ्लक्चुएशंस इन यूरोप फ्रॉम दि थर्टीन्थ टू दि ट्वेंटिएथ सेंचुरीज, 1980, पृ. 120.

ग्राफ 6.1

1501 से 1600 के बीच यूरोप के कुछ भागों में मूल्य और मजदूरी में उतार-चढ़ाव (25 वर्षों के औसत, 100 के सूचकांक पर आधारित 1501 से 1525 के बीच सिक्कों में चांदी की मात्रा)

है। आरंभ में सोलहवीं सदी में मूल्य वृद्धि का कारण व्यक्तिगत दुष्टता माना गया। धर्मशास्त्रियों और पादरियों ने एकाधिकारियों और सूदखोरों की जबरदस्त आलोचना की। जर्मन की संसद डेट ने इस स्थिति के लिए फ्यूगर्स और अन्य व्यापारी बैंकरों को दोषी माना। खाद्य पदार्थ व अन्य वस्तुओं की कमी को भी मानवीय कमजोरियों जैसे आलस्य और लालच का परिणाम माना गया। थामस मोर ने *यूटोपिया* में 'रसद की भारी कमी' के लिए कुछ 'कुछ लोगों के विवेकहीन लालच' को दोषी ठहराया। उन्होंने भेड़ों को मानवभक्षक बताया क्योंकि जैसा कि वह मानते थे, खाद्य पदार्थों में इसलिए कमी आ रही थी क्योंकि लालची जमींदारों ने अपनी खेती की जमीन को भेड़ पालन क्षेत्र में बदल दिया था ताकि वे ऊन की बिक्री से अधिक लाभ कमा सकें। थामस स्टार्की ने भी 1533 में बेकार और बेरोजगार लोगों के खिलाफ ऐसे ही विचार व्यक्त किए। इंगलैंड में निष्ठुर ढंग से लगान लेने वाले जमींदार और अनाज व्यापारी मूल्य वृद्धि के लिए दोषी ठहराए गए। अब तक इसका कोई भी सही विश्लेषण नहीं दिया जा सका। सभी विचार एक धारणा पर आधारित थे न कि उचित विश्लेषण आधारित।

सलमांका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मार्टिन डि अजपिलक्यूटा ने 1556 में एक और विश्लेषण दिया। उन्हें संदेह था कि मृल्य वृद्धि और सोने-चांदी की बढ़ती उपलब्धता के बीच संबंध है। उनके अनुसार मुद्रा की अधिकता वाले स्थानों की तुलना में जहां इसकी कमी थी वहां मुद्रा का मूल्य अधिक था। उन्होंने कहा कि स्पेन की तुलना में फ्रांस में मुद्रा की कमी थी। वह मानते थे कि इंडीज की खोज के बाद बिक्री योग्य वस्तुएं और श्रम काफी सस्ता हो गया। जॉन बोदें ने 1568 में इस विचार का और विश्लेषण किया। दो फ्रांसीसी विद्वानों—बोदें और मेल्सट्रोइट ने मुद्रास्फीति के कारणों की चर्चा की। मेल्सट्रोइट फ्रांसीसी शाही टकसाल के एक अधिकारी थे। उन्होंने कहा कि कथित मुद्रास्फीति भ्रामक थी। उन्होंने सोलहवीं सदी में चल रही कीमतों की तुलना तेरहवीं सदी में चल रही कीमतों के साथ की और मुद्रास्फीति का कोई संकेत नहीं पाया। वह मानते थे कि मूल्यों में जो भी थोड़ी-बहुत वृद्धि हुई है वह मुद्रा के अवमूल्यन के कारण है। यह सच है कि कई यूरोपीय सरकारों ने सिक्कों की संख्या बढ़ाने के लिए इनमें चांदी की मात्रा कम करके अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया था। यह अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपनी वस्तुओं की बेहतर कीमत प्राप्त करने और विलासितापूर्ण दरबारों के बढ़ते खर्च के कारण हुए कर्जों की अदायगी के लिए किया गया था। इंगलैंड की सरकार ने पहले 1520 में और फिर 1551 में अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया। इस अवधि के दौरान एक पेनी में चांदी की मात्रा घटाकर 1 : 6 कर दी गई। 1543 और 1546 के बीच एक शिलिंग में चांदी की मात्रा 100 ग्रेंस से घटाकर 40 ग्रेंस कर दी गई। जॉन बोदें ने इस बारे में अनेक विश्लेषण दिए। उन्होंने सोना और चांदी की आमद को मूल्य वृद्धि का मुख्य कारण बताया। वह मानते थे कि मुद्रा का अवमूल्यन मूल्य वृद्धि का पर्याप्त कारण नहीं हो सकता था। जॉ बोदें ने तर्क दिया कि खाद्य पदार्थों की

कीमतें इस सीमा तक बढ़ गई थी कि मुद्रा का मूल्य कम हो गया लेकिन वास्तविक कारण केवल अमरीकी चांदी का आगमन हो सकता था। बाद में रिचर्ड कैंटिलोन और ऐडम स्मिथ ने भी इस विचार से सहमति जताई। अठारहवीं सदी के अंत में ऐडम स्मिथ ने लिखा कि लगता है अमरीका में खनिजों के प्रचुर भंडार की खोज ही अनाज (कॉर्न) की तुलना में चांदी के मूल्य में कमी का मुख्य कारण थी। बीसवीं सदी में अर्ल जे हैमिल्टन ने (स्पेन के संदर्भ में) और फर्नेंद ब्रोदेल ने (भूमध्यसागर के संदर्भ में) इस सिद्धांत की ऐतिहासिक पुष्टि की। इसे 'मुद्रा मात्रा सिद्धांत' के रूप में जाना गया।

अर्ल जे. हैमिल्टन ने प्रमुख रूप से एंदालुसिया में सोलहवीं सदी की मूल्य वृद्धि के बारे में लिखा। बाद में उन्होंने इसे पूरे पश्चिमी यूरोप के संदर्भ में लागू किया। हैमिल्टन मानते थे कि अमरीकी सोना और चांदी के आयात और एंदालुसिया में मूल्यों के बीच गहरा संबंध है। उन्होंने 1503–05 से 1595 तक मूल्यों में वृद्धि का रुख देखा। वह मानते थे कि इस मूल्य वृद्धि का अमरीका से धन के आगमन के साथ गहरा संबंध है। अतः हैमिल्टन के अनुसार मूल्यों में सर्वाधिक वृद्धि सोने और चांदी के आयात में सर्वाधिक वृद्धि के समय हुई। उस अवधि के बाद सोने-चांदी के आयात में कमी के परिणामस्वरूप मूल्यों में कमी की प्रवृत्ति आई। इरविंग फिशर ने मात्रा सिद्धांत को एक नया गणितीय आधार दिया।

एम वी = पी टी

MV = PT

(यह समीकरण बताता है कि मुद्रा की आपूर्ति गुना परिचालन की गति वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य गुना सौदों की संख्या के बराबर है)

ग्राफ 6.2 में नई दुनिया से स्पेन में चांदी के आयात की झलक पेश की गई है। 1520 के दशक में सबसे पहले आयात किया गया था जिसमें 148 कि.ग्रा. की छोटी सी मात्रा का आयात भी शामिल है। अगले दशक में यह मात्रा स्वयं बढ़ गई और सोलहवीं सदी के अंत तक वृद्धि जारी रही। 1590 के दशक में यह आयात चरम पर पहुंच गया जब 27,07,627 कि.ग्रा. चांदी का आयात आधिकारिक माध्यमों से किया गया। बाद के दशकों में चांदी के आयात में निरंतर गिरावट की प्रवृत्ति रही।

मूल्य वृद्धि की इस व्याख्या की ओर तुरंत कई विद्वानों का ध्यान गया। इसके पक्ष और विपक्ष में विचार प्रकट किए गए। कई इतिहासकार इस विचार से पूरी तरह सहमत नहीं हैं। मुद्रा के मात्रा सिद्धांत की व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों आधारों पर बहुत आलोचना की गई है। वी और क्यू स्थिर है या नहीं, इस बारे में अकसर संदेह व्यक्त किए गए हैं। हैमिल्टन की कटु आलोचना करते हुए इनग्रिड हैमरस्ट्राम ने तर्क दिया कि हैमिल्टन ने अपनी बात का क्रम गलत रखा है। उन्होंने तर्क दिया कि मूल्यों में वृद्धि आर्थिक गतिविधि में तेजी के कारण हुई। मध्य यूरोप में खनन कार्यों में वृद्धि के कारण भी सोना और चांदी की आपूर्ति बढ़ी। उनके अनुसार मूल प्रश्न यह है कि सोने और चांदी का इस्तेमाल क्या किया गया।

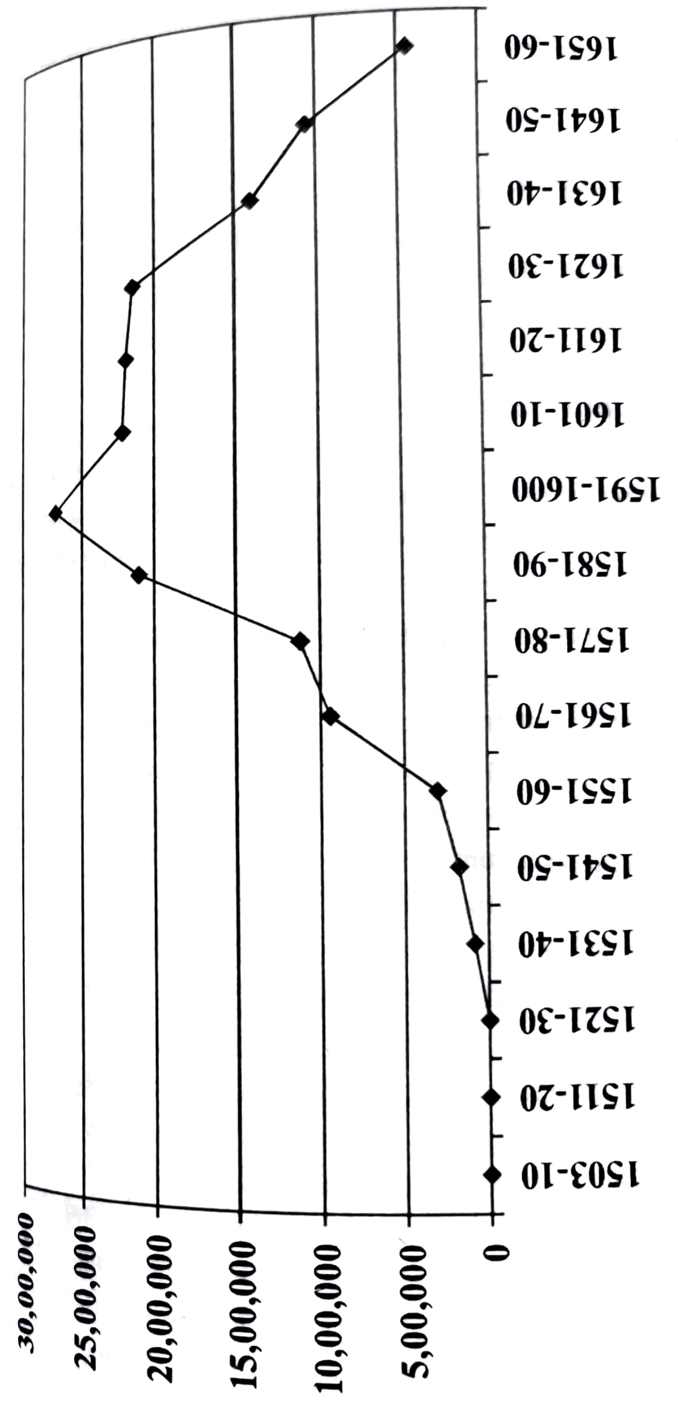

स्रोत : हैरी ए. मिस्किमिन, *दि इकानॉमि ऑफ लैटर रिनासं यूरोप*, पृ. 33, पर आधारित.

ग्राफ 6.2

1503–1660 में नई दुनिया से स्पेन में चांदी की आमद (किलोग्राम में)

वाई.एस. ब्रेनर भी हैमरस्ट्राम का समर्थन करते हैं और तर्क देते हैं कि वस्तुओं के मूल्य स्तर में परिवर्तन इस वजह से नहीं हुए कि धातु के यूरोपीय स्टाक में वृद्धि या कमी हुई बल्कि इस वजह से कि इसका किस रूप में इस्तेमाल किया गया। इंगलैंड का उदाहरण देते हुए ब्रेनर कहते हैं कि मूल्य वृद्धि अमरीकी खजाने के आने से पहले से मौजूद थी। पी. विलर और जॉर्ज नदाल जैसे इतिहासकारों ने हैमिल्टन की आलोचना केवल शहरी मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करने और स्थानीय बाजारों में मूल्यों का अनदेखा करने के लिए की। उनका तर्क था कि हैमिल्टन ने कैटेलोनिया और बास्क जैसे क्षेत्रों की अनदेखी की जोकि यूरोपीय अर्थव्यवस्था से शेष स्पेन की तुलना में अधिक निकट थे। वे हैमिल्टन द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों पर भी आपत्ति करते हैं क्योंकि इसमें शाही आय को निजी आय से अलग रखने के मानदंडों को नहीं दरशाया गया है।

मिस्किमिन और आर.एस. लोपेज जैसे लेखकों ने एक सामान्य अर्थ में मूल्य क्रांति की स्थिति पैदा करने में अमरीकी धातु की भूमिका को स्वीकार किया है। मिस्किमिन कहते हैं कि धातुओं के आमद से शायद लोग और संसाधन कार्यशील हो गए होंगे और साथ ही सरकार के वित्तपोषण के लिए उपलब्ध कोष में वृद्धि हुई होगी जिससे युद्ध लड़ने की लागत कम हो गई होगी। मिस्किमिन सोलहवीं सदी के पहले पचीस वर्षों में मुद्रास्फीति की दर कम रहने के हैमिल्टन के विचार का भी समर्थन करते हैं। वह महसूस करते हैं कि 1465 से पुनर्जागरण काल तक आर्थिक विकास एक धीमी रिकवरी की प्रक्रिया थी। मिस्किमिन मानते हैं कि कृषि उत्पादों और विनिर्मित वस्तुओं के मूल्यों में अंतर मात्रा सिद्धांत को गलत साबित नहीं करता क्योंकि इसके अलावा कई कारक थे जैसे जनसांख्यिकीय परिवर्तन, रुचि में परिवर्तन, मांग और आपूर्ति की अलग-अलग लोच। 'मुद्रा मात्रा सिद्धांत' में ये सभी तत्व आ सकते हैं। मूल्य वृद्धि की पर्याप्त व्याख्या नहीं कर पाने के लिए मुद्रा के मात्रा सिद्धांत की आलोचना की गई है। रॉफ डेविस विभिन्न श्रेणी के उत्पादों के बीच मूल्य वृद्धि में असमानता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। वह एक निश्चित ढर्रा दिखाते हैं जिसमें लगता है कि अनाज की कीमतें सबसे तेजी से बढ़ी हैं और औद्योगिक वस्तुओं की कीमतें धीरे-धीरे बढ़ी हैं। यदि मूल्य वृद्धि मुद्रा की अधिक आपूर्ति के कारण उत्पन्न हुई थी तो सभी वस्तुओं की कीमतें समान रूप से बढ़नी चाहिए थीं। मूल्य वृद्धि की दर और यूरोप में सोने-चांदी के आयात के कालक्रम के बारे में भी संदेह है। जैक.ए. गोल्डस्टीन ने *एम वी = पी टी* समीकरण के बारे में यह कहते हुए सुझाव दिया कि 1500 और 1650 के बीच बाजार में सक्रिय आबादी में 3 गुना या इससे थोड़ी अधिक वृद्धि हुई जबकि कुल उत्पादन में दो गुनी बढ़ोतरी हुई। इसे बाजार भागीदारी में 50 से 75 प्रतिशत वृद्धि से गुना किया जाना चाहिए। मौद्रिक समीकरण *पी = एमवी/क्यू* में भी *वी/क्यू* के अनुपात में 3 गुनी बढ़ोतरी हो सकती थी (क्योंकि *वी* जनसंख्या^{2} के रूप में बढ़ती है वहीं *क्यू* उसी अवधि में समान रूप में या थोड़ी कम बढ़ती है)। जैसा कि इस जनसंख्या वृद्धि से गति प्रभाव बढ़ा; मुद्रा की आपूर्ति में किसी भी वृद्धि से मूल्यों पर तिगुना प्रभाव पड़ता, अतः जनसंख्या-गति व्यवस्था (पोपुलेशन-वेलोसिटी मैकेनिज्म) मूल्य क्रांति के दौरान प्रमुख कारक थी। गोल्डस्टोन के अनुसार जनसंख्या गति सिद्धांत जो नेटवर्क थ्योरी से व्युत्पन्न है, में मूल्य क्रांति के दौरान मुद्रास्फीति की तीव्रता बताने की क्षमता है।

सी.एम. सिपोला के अनुसार इटली में सर्वाधिक औसत मूल्य वृद्धि 1552 और 1560 के बीच हुई जब मूल्यों में 5.2 प्रतिशत वार्षिक औसत वृद्धि दर्ज की गई जबकि अमरीकी चांदी की आमद ने इटली को सोलहवीं सदी के बाद ही प्रभावित किया। सिपोला के अनुसार उस अवधि के पहले मूल्य वृद्धि की वजह 1494 के बाद से चले लंबे युद्ध के बाद आई शांति बहाली थी। यह मूल्य वृद्धि के प्रमुख वजहों में से एक थी। मूल्य वृद्धि यूरोप में अमरीकी सोने-चांदी का प्रभाव महसूस किए जाने के काफी पहले ही हो चुकी थी। सिपोला के अनुसार 1570 के पहले इतालवी मूल्यों के बढ़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण लंबे युद्ध के बाद इस देश का पुनर्निर्माण कार्य था। इटली में मूल्यों में परिवर्तन को सिपोला द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित सारणी में देखा जा सकता है।

सारणी 6.1

1552-60 से 1600-17 के बीच इटली में मूल्य वृद्धि

अवधि	औसत वार्षिक उतार-चढ़ाव (प्रतिशत)
1552-1560	+5.2
1560-1565	−1.2
1565-1573	+3.3
1573-1590	−0.4
1590-1600	+3.1
1600-1617	−0.8

स्रोत : सी.एम. सिपोला, *दि फोंटाना इकानॉमिक हिस्टरी ऑफ यूरोप.*

उपर्युक्त सारणी 6.1 से स्पष्ट है कि इटली के मामले में यूरोप में सोने-चांदी की आमद का असर मूल्य वृद्धि पर नहीं पड़ा और निश्चित ही इसके अन्य कारण रहे होंगे। सिपोला मूल्य क्रांति शब्द पर संदेह करते हैं लेकिन वह यह स्वीकार करते हैं कि अमरीकी चांदी की आमद से मूल्य का एक स्तर बन गया जिसके नीचे मूल्य मंदी के लंबे दौर में भी नहीं जा सकता था। मिशेल मोरिनो कहते हैं कि गेहूं के मूल्यों में चढ़ाव या उतार फसल की स्थिति के अनुरूप होता था। बहुमूल्य धातुओं से मूल्य में इतनी वृद्धि नहीं हुई लेकिन इनके कारण मूल्य एक खास बिंदु से नीचे नहीं गिरा।

सोने-चांदी की मांग पंद्रहवीं सदी में भी थी जब अमरीकी खानों का पता भी नहीं चला था। आरंभ में चांदी की खदानें सर्विया और बोस्निया में ही विकसित हुई थीं। पंद्रहवीं सदी के मध्य तक ये तुर्की आक्रमण का एक महत्वपूर्ण कारण रहीं। 1460 के दशक से मध्य यूरोप में भी तकनीकी सहायता से चांदी की खानों का बहुत तेजी से दोहन किया जाने लगा। 1460 और 1530 के बीच मध्य एशिया में चांदी का उत्पादन पांच गुना बढ़ गया। 1526 से 1535 के बीच यह अपने शीर्ष पर पहुंच गया जब वार्षिक उत्पादन लगभग 10,00,000 कि.ग्रा. था (बी.एच. स्लिचर वॉन बाथ, पृ. 107)। व्यापार के विस्तार और मौद्रिक लेन-देन में वृद्धि के कारण यह आपूर्ति अपर्याप्त हो गई। पुर्तगाली सूडान से सोना खरीदने लगे लेकिन चांदी की आपूर्ति केवल मध्य यूरोप से हो सकती थी। समुद्रपारीय व्यापार के कारण यूरोप और पूरब के देशों के बीच असमान व्यापार संतुलन का भुगतान करने के लिए चांदी की खानों पर और भी दबाव पड़ा। 1530 के बाद अमरीकी खजाने की अप्रत्याशित खोज के कारण चांदी की कमी काफी कम हो गई। 1580 के बाद चांदी की आपूर्ति कई गुना बढ़ गई क्योंकि पारा के साथ चांदी के उपचार के बाद मिश्रण बनाने की नई पद्धति जो कि जर्मनी में विकसित की गई थी मध्य अमरीकी खानों में भी शुरू की गई। 1571 के बाद यह पद्धति ऊपरी पेरू के पोटोसी चांदी की खानों में भी अपनाई गई। इससे चांदी के उत्पादन में दस गुना वृद्धि हो गई। 1580 और 1630 के बीच चांदी की आपूर्ति बढ़ गई। बहरहाल मूल्यों में वृद्धि अमरीकी चांदी के आने से पहले ही शुरू हो गई थी और सत्रहवीं सदी में जब यूरोप में चांदी का आयात चरम पर था, मूल्यों में गिरावट का रुख आरंभ हो चुका था। अतः यदि 'मुद्रा मात्रा सिद्धांत' को मूल्य क्रांति के प्रमुख कारण के रूप में स्वीकार करना है तो परिचालन की गति और यूरोपीय अर्थव्यवस्था में विषमताओं के संदर्भ में इसके अनुप्रयोग को ध्यान में रखना जरूरी है। बहुमूल्य धातुओं की आमद और मूल्यों में वृद्धि के बीच संबंध पर इसकी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। इन धातुओं का खजाना ही मूल्य क्रांति का एक मात्र कारण नहीं था। कई अन्य कारकों से भी मूल्य प्रभावित हुए थे।

'मुद्रा मात्रा सिद्धांत' के विकल्प के रूप में जनसांख्यिकीय व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पीटर क्रीट और राफ डेविस जैसे विद्वान कहते हैं कि आर्थिक विस्तार की स्थितियों में प्रचलित मुद्रा का विकास शायद इस विस्तार का प्रतिबिंब है न कि इसका कारण। अतः संभव है, अन्य गैर मौद्रिक कारकों के कारण मूल्य क्रांति हुई और स्पैनिश चांदी की इसमें भूमिका गौण थी। उनके अनुसार वास्तविक कारण जनसंख्या वृद्धि थी। पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही थी। इसके साथ-साथ शहरीकरण भी बढ़ रहा था। नतीजतन शहरी केंद्रों में लोगों का संचलन बढ़ा। जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य पदार्थ, ईंधन और वस्त्र की मांग में भी बढ़ोतरी हुई।

जनसंख्या के आंकड़ों संबंधी स्रोत बहुत असंतोषजनक हैं। पूरी सोलहवीं सदी के लिए कोई जनगणना रिपोर्ट या विश्वसनीय अनुमान नहीं है। जो भी आंकड़े हैं वे पादरी क्षेत्र के रजिस्टरों, टैक्स विवरणी या नामावलियों से एकत्रित किए गए हैं। ये सभी साक्ष्य पंद्रहवीं सदी के अंत से सत्रहवीं सदी के आरंभ तक जनसंख्या वृद्धि की ओर इशारा करते हैं।

सोलहवीं सदी में यूरोपीय जनसंख्या अभी भी ग्रामीण ही थी। उत्पादन प्रक्रिया अधिकांशतया पारंपरिक और अपेक्षाकृत अपरिवर्तनशील ढांचे में चल रही थी। अधिकांश विस्तार कृषि के बाहर हुआ था क्योंकि खेती की पद्धति अपरिवर्तनशील थी। ऐसे ढांचे में आबादी का संचलन मांग बढ़ने का एक बड़ा कारण बन गया। यद्यपि अठारहवीं सदी के पहले किए गए जनसांख्यिकीय अध्ययन में बहुत खामियां हैं और शायद ही कोई विश्वसनीय अनुमान उपलब्ध है, फिर भी सिपोला, हिल्टन, पीटर क्रीट, जे.यू. नेफ और कई अन्यों ने विभिन्न स्रोतों के आधार पर एक मोटा-मोटी आकलन पेश किए हैं। जनसंख्या के बारे में अधिकांश सूचना नगरपालिका के रेकाड्र्स घरों की जिलेवार या प्रादेशिक जनगणनाओं, भूमि रजिस्टरों, टैक्स के रेकाड्र्स और सैनिक भरती के लिए बनाई गई नामावलियों से ली गई हैं। इन सब के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि 1500 में यूरोप में पांच बड़े शहर थे—कुस्तुनतुनिया, नेपल्स, बेनिस, मिलान और पेरिस। इनमें प्रत्येक की आबादी, 1,00,000 से अधिक थी। 1600 तक सात या आठ नए शहर उभर गए जैसे रोम, पालेर्मो, मेसिना, मार्सिलेस, लिस्बन, सेविले, एंटवर्प, लंदन, एम्स्टर्डम, और शायद मास्को। पेरिस और नेपल्स की जनसंख्या 2,00,000 से अधिक हो गई थी। कई छोटे शहरों का विस्तार भी हुआ जैसे वियेना, लुबक, आग्स्बर्ग, स्ट्रॉसबर्ग, डैंजिग आदि। पीटर क्रीट कहते हैं कि यदि 100 से सूचकांक पर 1500 को आधार वर्ष माना जाए तो उत्तरी यूरोप में सूचकांक 163, पश्चिमोत्तर यूरोप में 154, दक्षिणी यूरोप में 132, मध्य यूरोप में 130 दक्षिण-पूर्व यूरोप में 123 और पूर्वी यूरोप में 125 पर पहुंच गया। पुलियस बेलोक के अनुसार 1600 के आसपास जर्मनी, फ्रांस और इटली सबसे अधिक आबादी वाले क्षेत्र थे। जबकि स्कैंडिनेविया और डेनमार्क सबसे कम आबादी वाले क्षेत्र। इटली का जनसंख्या घनत्व सर्वाधिक था। इसका घनत्व 114 व्यक्ति प्रति वर्गमील था; निचले देशों में यह 104, फ्रांस में 88, इंगलैंड और वेल्स में 78 था। एफ.सी. स्पूनर ने *दि न्यू कैंब्रिज माडर्न हिस्टरी*, खंड III में लिखा है कि जर्मनी में औसत घनत्व लगभग 73 था जबकि स्पेन और पुर्तगाल का औसत घनत्व 44 था। लोंबार्डी सबसे अधिक धनी आबादी वाला क्षेत्र था। ये सभी आंकड़े मोटे अनुमानों पर आधारित हैं और इतिहासकारों की पद्धति पर निर्भर करते हैं। यह अनुमान है कि 1450 में यूरोप की आबादी 50 से 60 मिलियन थी लेकिन 1600 में यह 82-85 मिलियन हो गई (एफ.सी. स्पूनर, पृ. 32)। अन्य विद्वान यह संख्या बहुत अधिक बताते हैं। निम्नलिखित सारणी से सोलहवीं सदी के दौरान जनसंख्या वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है जिसमें 1500 और 1700 के बीच जनसंख्या के आंकड़े दिए गए हैं (सारणी 6.2)।

सारणी 6.2

1500–1700 में देशवार यूरोप की जनसंख्या (अनुमान मिलियन में)

क्षेत्र और देश	लगभग 1500	1600	1700
स्पेन और पुर्तगाल	9.3	11.3	10.0
इटली	10.5	13.3	13.3
फ्रांस (लोरेन और सेवोय सहित)	16.4	18.3	20.0
बेनेलक्स देश	1.9	2.9	3.4
ब्रिटिश प्रायद्वीप	4.4	6.8	9.3
स्कैंडिनेवियाई देश	1.5	2.4	2.8
जर्मनी	12.0	15.0	15.0
स्विटजरलैंड	0.8	1.0	1.2
डर्बियन देश	5.5	7.0	8.8
पोलैंड	3.5	5.0	6.0
रूस	9.0	15.5	17.5
बालकंस	7.0	8.0	8.0
समस्त यूरोप	81.8	104.7	115.3

स्रोत : सी.एम. सिपोला, *दि फोंटाना इकानॉमिक हिस्टरी ऑफ यूरोप*, पृ. 38.

जैसा कि सारणी 6.2 से स्पष्ट है सोलहवीं सदी में यूरोप के प्रत्येक भाग में जनसंख्या में लगातार बढ़ोतरी हुई, हालांकि वृद्धि दर अलग-अलग थी। इससे कृषि संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव आ गया। फलस्वरूप खेती योग्य जमीन में विस्तार हुआ। कृषि जिंसों का उत्पादन बढ़ गया लेकिन इसकी उत्पादन तकनीकी में कोई बदलाव नहीं आया। सामंती व्यवस्था की प्रकृति के कारण यह वृद्धि एक सीमा से ज्यादा नहीं की जा सकी। जनसंख्या वृद्धि से शहरीकरण की प्रक्रिया में तेजी आई। चूंकि ग्रामीणों के परिवार बढ़ने लगे इसलिए उन्होंने अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पाद का अधिक हिस्सा अपने पास रखना शुरू किया। खाद्यान्नों की बढ़ती मांग और घटती आपूर्ति की यह प्रकृति बतलाती है कि कृषि उत्पादों खास तौर पर अनाज की कीमतें सबसे ज्यादा क्यों बढ़ीं। इससे यह भी पता चलता है कि विनिर्मित वस्तुओं की कीमतें उसी अनुपात में क्यों नहीं बढ़ीं। बढ़ती शहरी आबादी का दबाव का अनुमान निम्नलिखित सारणी से लगाया जा सकता है।

जैसा कि सारणी 6.3 से स्पष्ट है बेल्जियम और नीदरलैंड्स सर्वाधिक शहरीकृत क्षेत्र थे लेकिन बेल्जियम इस गति को बरकरार नहीं रख सका और इसकी शहरी आबादी की प्रतिशतता घट गई। इटली, स्पेन और पुर्तगाल में भी यही प्रवृत्ति देखी गई लेकिन सत्रहवीं

सारणी 6.3

कुल जनसंख्या की प्रतिशतता के रूप में शहरी आबादी

	1500	1550	1600	1650	1700	1750
स्कैंडिनेविया	0.9	0.8	1.4	2.4	4.0	4.6
इंगलैंड और वेल्स	3.1	3.5	5.8	8.8	13.3	16.7
स्कॉटलैंड	1.6	1.4	3.0	3.5	5.3	9.2
आयरलैंड	0	0	0	0.9	3.4	5.0
नीदरलैंड्स	15.8	15.3	24.3	31.7	33.6	30.5
बेल्जियम	21.1	22.7	18.8	20.8	23.9	19.6
जर्मनी	3.2	3.8	4.1	4.4	4.8	5.6
फ्रांस	4.2	4.3	5.9	7.2	9.2	9.1
स्विटजरलैंड	1.5	1.5	2.5	2.2	3.3	4.6
इटली	12.4	12.8	14.7	14.0	13.4	14.2
स्पेन	6.1	8.6	11.4	9.5	9.0	8.6
पुर्तगाल	3.0	11.5	14.1	16.6	11.5	9.1
अस्ट्रिया/बोहेमिया/मोरेविया	1.7	1.9	2.1	2.4	3.9	5.2
पोलैंड	0	0.3	0.4	0.7	0.5	1.0

स्रोत : जां.द व्री, *यूरोपियन अर्बनाइजेशन 1500–1800*, एन.जे.जी पाऊंड्स द्वारा उद्धृत, पृ. 271.

सदी के मध्य के बाद ही। नीदरलैंड और इंगलैंड में सत्रहवीं सदी के मध्य से शहरीकरण में अपेक्षाकृत बहुत तेजी आई। यह समय डच वर्चस्व का था जिसके बाद इंगलैंड की आर्थिक उन्नति का समय आया। हालांकि जनसंख्या वृद्धि मूल्यों में बढ़ोतरी का एकमात्र कारण नहीं थी। सोलहवीं सदी में मूल्य वृद्धि के कई अन्य कारण भी थे : युद्धों के चलते प्रचलित मुद्रा की गति में वृद्धि, बढ़ती शहरी आबादी जिससे कृषि उत्पादों व विनिर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ रही थी; आर्थिक संपन्नता, युद्ध के खर्च और पुनर्निर्माण पर व्यय आदि। साथ ही मुद्रा के मात्रा सिद्धांत को भी पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि वह हर चीज जिसकी पंद्रहवीं सदी के अंत से लेकर सत्रहवीं सदी के आरंभ तक कीमतें बढ़ीं, एक-दूसरे पर निर्भर थीं : मनीज ऑफ एकाउंट, सिक्के, राज्य या अर्थव्यवस्था का स्तर, सामाजिक ढांचे, मांग में कमी-बेशी, जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियां और धातुओं की उपलब्धता। मनी ऑफ एकाउंट से हमारा तात्पर्य उस माप के पैमाने से है या सोने के सिक्कों, चांदी या तांबा के माप की उस इकाई से है जो उनके बीच एक मान्य संबंध स्थापित करती है। यह दैनिक उपयोग में आने वाली मुद्रा से अलग है और इसका इस्तेमाल

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भुगतान के लिए किया जाता है (मनी ऑफ एकाउंट के लिए हि *कैंब्रिज इकॉनामिक हिस्टरी ऑफ यूरोप*, खंड IV, पृ. 390 देखें)।

मूल्य क्रांति का प्रभाव

जैसा कि इस अध्याय में ऊपर बताया गया कि मूल्य क्रांति के कारणों की व्याख्या अलग-अलग इतिहासकारों ने अलग-अलग ढंग से की है। इसी प्रकार मुद्रास्फीति के परिणाम भी गरमागरम बहस का विषय रहा है। कहा जाता है कि मूल्य क्रांति का असर पूरे यूरोप पर पड़ा। साथ ही यह भी गौरतलब है कि इसका असर एक समान नहीं था और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ा।

अर्ल जे. हैमिल्टन का मत था कि मूल्य क्रांति के दौरान मजदूरी की दर मूल्यों से कम थी। इससे लाभ में स्फीति आई। लाभ में वृद्धि से व्यवसाय और पूंजी निवेश को बढ़ावा मिला। इससे पूंजीवादी विकास और आर्थिक संपन्नता बढ़ी। हैमिल्टन ने जोर देकर कहा कि केवल मूल्य वृद्धि नहीं हुई बल्कि मजदूरी में भी कमी आई। इससे मजदूर आय के एक बड़े भाग से वंचित रह गए और यह धन अन्य को मिला। लगान और मजदूरी में वृद्धि मूल्यों में वृद्धि से काफी कम थी। अतः इस लाभ और व्यापार से मिले फायदों से पूंजीवादी उद्यमों को जबरदस्त प्रोत्साहन मिला। मजदूरी और मूल्यों के बीच असमानता लगभग 1530 के दशक में स्पष्ट हो गई। नतीजतन मजदूरों में असंतोष बढ़ा और कभी-कभी खुलेआम विद्रोह भी हुए। जे.एम. कींस इस विचार का न केवल समर्थन करते थे बल्कि उन्होंने हैमिल्टन से काफी आगे जाकर यह कहा कि लाभ स्फीति और लाभ में कमी की अवधि का फ्रांस, इंगलैंड और स्पेन के क्रमशः राष्ट्रीय उत्थान और पतन के बीच असाधारण संबंध था। कई अन्यों ने यह तर्क दिया कि अतिरिक्त सोने-चांदी ने मुद्रा की आपूर्ति बढ़ा कर मुद्रा के उपयोग को बढ़ावा दिया। इससे पूंजी की गतिशीलता बढ़ी, निवेश को प्रोत्साहन मिला, बाजार की गतिविधियां बढ़ीं, और इसके फलस्वरूप श्रम विभाजन हुआ। ये विचार बड़ी ही सरलतापूर्वक व्यक्त किए गए थे और बाद में इनकी खूब आलोचना हुई। जे.यू. नेफ और डेविड फेलिक्स हैमिल्टन के विचारों से सहमत नहीं थे और उन्होंने यह स्वीकार करने से मना कर दिया कि लाभ में वृद्धि से स्वतः पूंजी का निर्माण होता है। नेफ कहते हैं कि जबकि सबसे ज्यादा मूल्य वृद्धि स्पेन में हुई, लाभ में सर्वाधिक वृद्धि शायद फ्रांस में हुई लेकिन सबसे तेज आर्थिक विकास इंगलैंड में हुआ। मजदूरी दरों, मूल्य और औद्योगिक तकनालॉजी के बारे में अपने अध्ययन के आधार पर वह मानते हैं कि इससे कोई मना नहीं कर सकता कि मूल्य क्रांति से पूंजीवाद को बढ़ावा मिला लेकिन मूल्य में उतार-चढ़ाव का प्रभाव काफी अधिक जटिल था। डेविड फेलिक्स भी कहते हैं कि लाभ स्फीति, जैसा कि हैमिल्टन और कींस ने बताया था, का कोई स्पष्ट संकेत नहीं था।

मूल्य क्रांति के परिणामस्वरूप साबुन, ग्लास और चीनी रिफाइनरी में नई तकनीकी और खोज के रूप में विनिर्माण क्षेत्र में कुछ नए परिवर्तन हुए लेकिन ये बहुत ही छोटे उद्योग थे। बड़े उद्योगों जैसे कपड़ा, पोतनिर्माण और धातु प्रसंस्करण में सोलहवीं सदी में शायद ही कोई बदलाव आया। कपड़ा विनिर्माण व्यापार संघ नियंत्रित शहरी केंद्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गया ताकि नगरपालिका के नियंत्रण और सख्त विनियमों से बचा जा सके और सस्ते श्रम का उपयोग किया जा सके।

कुछ विद्वानों ने मूल्यों और मजदूरी के बीच संबंध तलाशने और इसकी व्याख्या करने की कोशिश की है। स्लिचर वैन बाथ ने अनाजों के मूल्यों, जनसंख्या वृद्धि और वास्तविक मजदूरी के स्तरों संबंधी मसौदों की एक शृंखला तैयार की। उन्होंने यह स्थापित करने की कोशिश की कि जनसंख्या में कमी-बेशी का उपभोग पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है और इससे कीमतें प्रभावित होती हैं। उनके अनुसार मूल्य स्तर और मूल्य में उतार-चढ़ाव मुद्रा की मात्रा और इसके परिचालन दर द्वारा निर्धारित होते हैं। मूल्यों में कमी या वृद्धि बहुत महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि मुद्रा विनिमय का एक माध्यम है। वास्तविक मजदूरी के निर्धारण के लिए कोई व्यक्ति मुद्रा की कुछ मात्रा द्वारा व्यक्त कृषि उत्पाद की कतिपय मात्रा के लिए दैनिक उपभोग की वस्तुओं पर अपनी आय से खर्च की जाने वाली राशि और श्रम का हिसाब लगाकर देखता है। उनके अनुसार पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में खास तौर पर 1550 के बाद वास्तविक मजदूरी में सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक निरंतर रूप से कमी आई। इस समय यह न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई। जहां मौद्रिक स्फीति के समय मजदूरी का स्तर बढ़ रहा था लेकिन इसकी वृद्धि दर मूल्यों में वृद्धि दर के अनुपात में नहीं थी। मजदूरों और कारीगरों की वास्तविक आय तेरहवीं सदी के बाद सबसे निचले स्तर पर पहुंच गई थी। 1700-49 के स्तर पर दस वार्षिक औसतों के आधार पर मार्क ओवरटन ने इंगलैंड के लिए गेहूं, जौ, ओट्स, मटन, ऊन और मजदूरी सहित विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों की सारणी बनाई है। गेहूं के मूल्य में निरंतर और तेजी से वृद्धि हुई जो 1590 के दशक तक 22 अंक से 100 अंक तक पहुंच गई। जौ के मूल्य में भी तेजी से वृद्धि हुई और उसी अवधि में यह 17 अंक से बढ़कर 92 अंक हो गई और ऊन की कीमतें 24 से बढ़कर 89 अंक पर पहुंच गई। मजदूरी 32 अंक से बढ़कर 70 पर पहुंची लेकिन यह वृद्धि अन्य वस्तुओं की तुलना में काफी कम थी। बहरहाल वास्तविक मजदूरी आधे से अधिक घट गई यानी 146 से घटकर 72 अंकों पर आ गई। यह दिए गए ग्राफ 6.3 से स्पष्ट है।

इतिहासकार आम तौर पर सहमत हैं कि सोलहवीं सदी की मुद्रास्फीति के व्यापक सामाजिक परिणाम हुए। मजदूरी की तुलना में मूल्यों में ज्यादा तेजी से बढ़ोतरी हुई। इससे शहरी आबादी में सामाजिक तनाव बढ़े। शहर के मजदूर और वैतनिक वर्ग गंभीर रूप से प्रभावित हुए। इसके अलावा मूल्य वृद्धि से प्रशासन लागत काफी बढ़ गई और कई शासकों के लिए गंभीर समस्याएं उठ खडी हुईं। इंगलैंड के प्रथम दो स्टुअर्ट शासकों को उनकी

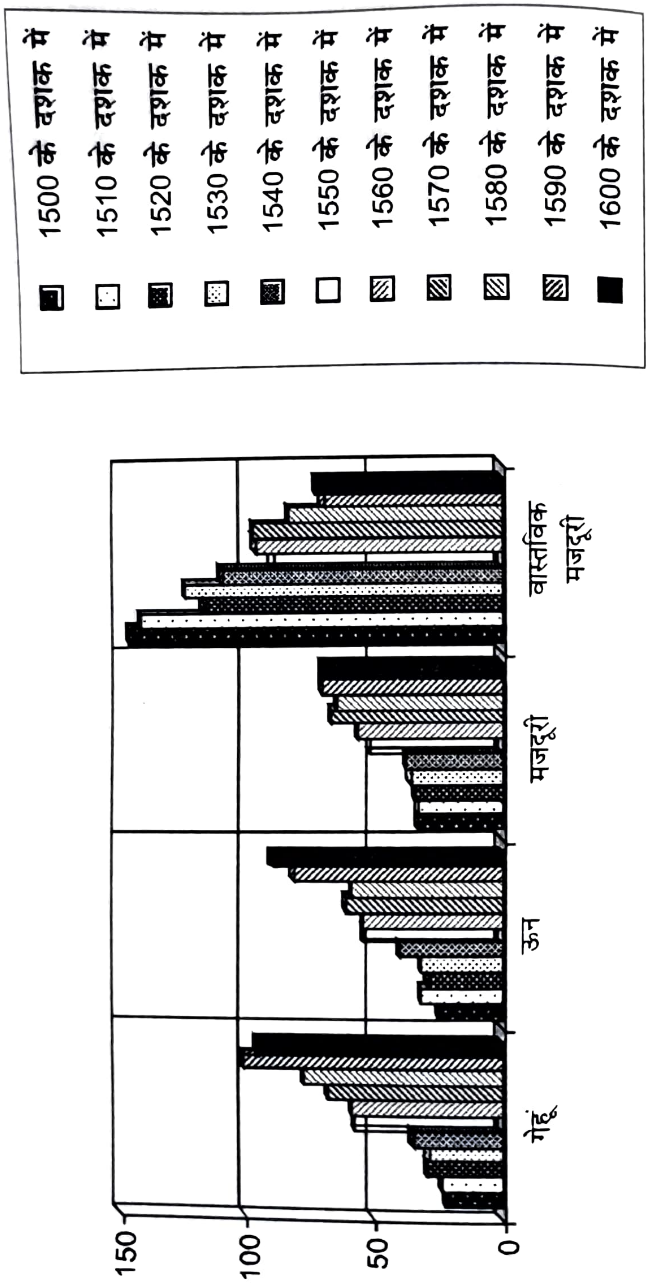

स्रोत : मार्क ओवरटन, पृ. 64.

ग्राफ 6.3
1500–1600 में इंग्लैंड में मूल्य स्तर (दस वार्षिक औसत 1700–49 = 10)

वित्तीय नीतियों के कारण जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और संसद से उनका संबंध विच्छेद हो गया। बढ़ते कर्ज के कारण स्पैनिश शासकों के लिए भी गंभीर खतरे उत्पन्न हो गए। फ्रांसीसी शासकों को राज्य द्वारा कर लगाने के सवाल पर जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा।

कई इतिहासकार मानते हैं कि मूल्य क्रांति ने पश्चिमी यूरोप में आर्थिक परिवर्तन के लिए बहुत बड़ा प्रोत्साहन दिया। नतीजतन कृषि में जागीरदारी प्रथा आंशिक रूप से समाप्त हो गई। इसके साथ-साथ महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए। मूल्य क्रांति का असर अलग-अलग वर्गों के लोगों ने अलग-अलग ढंग से महसूस किया। बाजार की सभी वस्तुएं इससे समान रूप से प्रभावित नहीं हुईं लेकिन वर्गों और व्यक्तियों के बीच आर्थिक संबंधों में व्यापक बदलाव आए। इससे वर्गों में आय का पुनर्वितरण हुआ और क्षेत्रों और देशों के बीच का अंतर व्यापक हो गया। फिर भी पर्याप्त आंकड़ों की अनुपस्थिति में एक स्पष्ट आकलन खास तौर पर यूरोप के ग्रामीण समाज का आकलन करना आसान नहीं है। कई विद्वानों ने तर्क दिया है कि मूल्य क्रांति ने सोलहवीं सदी के दौरान इंग्लैंड में जेंट्री (छोटे जमींदार) वर्ग को जन्म दिया। चूंकि वे बाजार से जुड़े थे इसलिए उन्होंने खेती से बहुत लाभ कमाए और वे एक जबरदस्त राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे। हालांकि हाल के अध्ययनों में इस विश्लेषण पर संदेह व्यक्त किया गया है कि जेंट्री वर्ग का उदय बाजार की अनुकूल स्थितियों के कारण हुआ या शाही कृपा से।

फ्रांस, स्पेन और इटली में कुलीन वर्ग ने मूल्य क्रांति से उत्पन्न गंभीर वित्तीय समस्याओं का समाधान अपनी भूमि का लगान बढ़ाकर या प्रवेश पर जुर्माना लगाकर किया। उच्च कुलीन वर्ग को खासकर फ्रांस में उनकी सैनिक और प्रशासनिक सेवाओं के बदले पेंशन, भूमि या पद के रूप में राजा का अनुग्रह प्राप्त हुआ। फ्रांस के छोटे कुलीन वर्ग के लोग आर्थिक स्थितियों के अनुरूप अपने लगान का समायोजन करने में कम सफल रहे। नतीजतन उनमें से कई सेना में भरती हो गए या धार्मिक युद्धों में शामिल हो गए। इस स्थिति में छोटे कुलीन वर्ग के छोटे बेटों को नुकसान हुआ। होल्सटनीन और डेनमार्क में कुलीनों ने अनाज और डेयरी उत्पाद प्राप्त कर किसानों और विदेशी व्यापारियों के बीच बिचौलिया का काम करके बढ़े हुए दामों से लाभ कमाया। जर्मनी में स्थान और वर्ग के अनुसार इसके सामाजिक प्रभाव अलग-अलग थे। जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्र में कुलीन वर्ग ने बावेरिया और आस्ट्रिया को छोड़कर अन्यत्र लगान बढ़ाना मुश्किल पाया क्योंकि शासन कर रहे राजकुमारों ने प्रवेश पर जुर्माना लगाने के उनके दावे को मंजूरी दे दी थी। दक्षिण पश्चिम जर्मनी में स्थिति थोड़ी अलग थी। राजकुमारों ने स्थानीय रीति-रिवाजों के स्थान पर मनमाने रोमन कानून लागू करके अनेक स्थानों पर किसानों में रोष पैदा कर दिया। उन्होंने नए कर लगाकर गांवों और जागारदारी पर सीधा अपना नियंत्रण कर लिया। पश्चिमी यूरोप के कई भागों में यह देखा गया कि जिन किसानों को उनके मालिकों के बकायों को जोड़कर एक

निश्चित धनराशि का भुगतान करना था, वे वास्तव में अपनी पहले की पीढ़ी से कम भुगतान कर रहे थे। इसके विपरीत जमीन मालिकों को इसलिए कम भुगतान प्राप्त हो रहा था क्योंकि मुद्रा का मूल्य घट रहा था। यह स्थिति उन जमींदारों के लिए फायदेमंद थी जो अपनी जमीन कम समय के लिए पट्टे पर देते थे। वे बाजार की स्थिति का लाभ ले रहे थे।

मध्य यूरोप के कई भागों में मूल्य क्रांति का उल्लेखनीय सामाजिक आर्थिक प्रभाव पड़ा। पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप में राई, लकड़ी और फर जैसे उत्पादों का बाजार बढ़ रहा था। मूल्य स्फीति के कारण उत्पन्न इस नई स्थिति से पोलैंड को लाभ हुआ। जमीनमालिकों ने सामंती नकदी लगान की जगह सेवा लगान लेना शुरू कर दिया। वे किसानों को उनके जोतों से जबरन जोड़कर अपनी *दिमेन* भूमि पर बड़े पैमाने पर खेती कराने के लिए सस्ते श्रमिक रखने लगे। स्थानीय राजकुमार इस नई कृषिदास प्रथा को रोकने के लिए कुछ नहीं कर सके क्योंकि वे खुद इन जमीन मालिकों या *जंकर्स*, जैसा कि उन्हें कहा जाता था, पर निर्भर थे।

मूल्य वृद्धि की इस अवधि में आम तौर पर छोटे किसानों को नुकसान हुआ क्योंकि वे कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि का लाभ लेने में सक्षम नहीं थे। वे छोटे पैमाने पर खेती करते थे और बाजार के कारोबार में स्वतंत्र रूप से भाग नहीं ले सकते थे। पोलैंड का मध्य वर्ग भी इसका फायदा नहीं उठा सका क्योंकि कुलीन वर्ग उन पर अपना दबदबा बनाए हुए था। पोलिश शहरों में व्यापारी वर्ग द्वारा पूंजी संचय करने पर प्रतिबंध था क्योंकि बड़े जमींदार व्यापार से होने वाले लाभ अपनी जेब में रखते थे। महंगाई के कारण लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। मूल्य वृद्धि के समय में व्यापारी वर्ग और कुलीन वर्ग डेट (पोलिश संसद) में एक-दूसरे पर खूब आरोप-प्रत्यारोप लगाते थे। यह स्थिति केवल पोलैंड या जर्मनी तक ही सीमित नहीं थी बल्कि बोहेमिया में भी देखी जा सकती थी। सोलहवीं सदी के मध्य में हैब्सवर्ग विरोधी आंदोलन के समय कुलीन वर्ग ने न केवल किसानों को कृषिदास बनाया बल्कि उन पर अपना उत्पाद सीधे बाजार में भेजने पर प्रतिबंध लगाकर अनाज व्यापार में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने खुद उनका उत्पाद खरीदा और सैक्सनी व अन्य क्षेत्रों में लाभकारी दर पर निर्यात किया।

अलग-अलग विद्वानों ने भूमि और काश्तकारी के बीच संबंध पर मूल्य क्रांति के प्रभाव को अलग-अलग ढंग से देखा है। यह सच है कि मूल्य वृद्धि से सभी लोग समान रूप से प्रभावित नहीं थे। लंबी दूरी के खाद्यान्न व्यापार से बिचौलियों को या इस व्यापार को नियंत्रित करने वालों को फायदा हुआ। आम तौर पर यह खेती करने वालों के लिए अनुकूल था क्योंकि कृषि उत्पादों की कीमतें सबसे ज्यादा बढ़ीं। मूल्य क्रांति के कारण आय का पुनर्वितरण हुआ, यद्यपि इसका असर यूरोप के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग हुआ। इंगलैंड के मामले में अब यह स्वीकार नहीं किया जाता है कि जमींदारों द्वारा अधिक लगान लगाने से सभी किसानों को समान रूप से हानि हुई। अधिकांशतया छोटे जमींदार या

अध्याय सात

सत्रहवीं सदी का संकट

पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जो व्यापारिक विस्तार आरंभ हुआ था वह 1600 और 1620 के बीच यूरोप के कई भागों में समाप्त होने लगा। कुछ क्षेत्रों में विकास की गति धीमी पड़ गई, कहीं उसमें ठहराव आया और कई क्षेत्रों में इसमें निरंतर गिरावट आने लगी। सोलहवीं सदी के दौरान आर्थिक गतिविधियों का केंद्र बदल गया और व्यापार की चहल-पहल भूमध्यसागर के इतालवी नगर-राज्यों से हटकर आईबेरियन राज्यों (स्पेन और पुर्तगाल) में होने लगी। बाद में यह व्यापारिक केंद्र और भी उत्तर की ओर अटलांटिक के उत्तर पश्चिमी राज्यों, खास तौर पर हालैंड और इंगलैंड में स्थानांतरित हो गया। आईबेरियन प्रायद्वीप और इतालवी राज्य जो सोलहवीं सदी के आरंभ में यूरोप के दो संपन्न क्षेत्र थे, तेजी से पतन की ओर बढ़ रहे थे। सत्रहवीं सदी में पूरी यूरोपीय अर्थव्यवस्था में संकुचन देखा गया। 1600 के बाद कृषि क्षेत्र के सहयोग के अभाव का वाणिज्यिक और औद्योगिक क्षेत्रों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। यूरोप के कई हिस्सों में विद्रोह, संघर्ष और युद्ध और राजनीतिक अव्यवस्था देखी गई। कई भागों में जनसंख्या में कमी या स्थिरता की प्रवृत्ति नजर आई। समकालीन इतिहासकारों ने इस समय के यूरोप की विनाशकारी तसवीर पेश की है। अनेक विद्वानों ने सत्रहवीं सदी को संकट काल कहा है। यद्यपि यूरोप की उस समय की समस्याओं की व्यापकता और प्रकृति के बारे में इतिहासकारों में बहस अभी भी जारी है, लेकिन एक आम सहमति है कि सत्रहवीं सदी का समय संकट का समय था। यूरोप के संकट के इस काल में मूध्यसागरीय राज्यों के पतन को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

सोलहवीं सदी में यूरोपीय अर्थव्यवस्था का जो चहुंमुखी विकास हुआ था, इस सदी के अंतिम दशक में पहले भूमध्यसागर क्षेत्र में और बाद में अन्य भागों में रुक सा गया। इसका एक मात्र अपवाद यूरोप का पूर्वोत्तर क्षेत्र था जिसमें हालैंड और इंगलैंड शामिल थे। कहा जा सकता है कि सोलहवीं सदी में मध्यकालीन ढांचे की बाधाओं को तोड़कर आधुनिक अर्थव्यवस्था के युग में प्रवेश करने का प्रयास किया गया लेकिन यह सफल नहीं हो सका। दरअसल समूचा विकास पुराने ढांचे के तहत हुआ। अतः उत्पादन का पुराना सामंती तरीका न केवल जारी रहा, बल्कि अधिकांश क्षेत्रों में संकट के दौरान यह पुनः सशक्त हो गया। पुरानी आर्थिक प्रणाली को छोड़ने और पूंजीवाद के निश्चित दौर में प्रवेश करने के लिए यूरोप को अठारहवीं सदी तक इंतजार करना पड़ा।